ॐ

द्वादश
ज्योतिर्लिङ्ग-यात्रा

ध्यायेन्नित्यं महेशं, रजतगिरिनिभं, चारुचन्द्रावतँसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं, परशुमृगवराऽभीतिहस्तं, प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं, समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिवसानं,
विश्वाद्यं, विश्ववन्द्यं, निखिलभयहरं, पञ्चवक्त्रं, त्रिनेत्रम् ॥१॥

अनन्त श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामि—

रामानन्द सरस्वती

(असिधाराव्रती)

हरिः ॐ तत्सत्

द्वादशज्योतिर्लिङ्ग-यात्रा

समर्पणम्

अनन्त श्रीमत्परमहँस परिव्राजकाचार्य, तपस्त्यागमूर्ति,
ब्रह्मविद्वरिष्ठ श्रीरामानुरागि, सद्गुरुस्वामि—
शिवानन्दसरस्वतीजू देवमहाराज-
करकमलयोः समुपहारोभवतु
द्वादशज्योतिर्लिङ्ग-यात्रा

समर्पकः—

अनन्त श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य, हरिहराद्वैतवादी,
महामहोपदेशक, व्याख्यानवाचस्पति, शास्त्ररत्नाकर,
व्याकरणतीर्थ, साहित्य, न्याय, वेदान्ताचार्य-
स्वामि-रामानन्द-सरस्वती (असिधाराव्रती)
जी महाराज—रचयिता

प्रकाशक—
पण्डित रामदुलारे द्विवेदी
जमुराँवाँ, ज़िला फतेहपुर

प्रथम संस्करण
१००० प्रति

वि० सं० २००९
श्रीरामनवमी

मूल्य १॥)

प्रकाशक
पण्डित रामदुलारे द्विवेदी
मु० पो० जमुराँवाँ,
जिला फतेहपुर

प्रथमसंस्करण
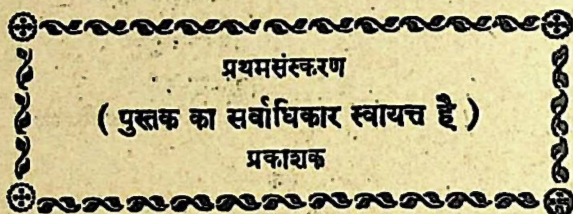
मुद्रक—
बालकृष्ण शास्त्री,
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज,
काशी।

ॐ

द्वादशज्योतिर्लिङ्गयात्रा-प्रस्तावना

सज्जनों !

इस कर्मक्षेत्र संसार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही पुरुषार्थ चतुष्टय हैं। इन चारों में तीन पुरुषार्थ और मोक्ष परम पुरुषार्थ है। धर्म का नाम प्रथम श्रेणी में इसलिये है कि धर्म ही के आधीन अन्य तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति है। मोक्ष में भी परम्परा से धर्म सहायक है। पुरुषार्थ ये इसलिये कहाते हैं कि पुरुष से अर्थ्यमान (प्राप्यमान) हैं धर्म वैदिकविधिवाक्यों से प्रतिपादित लौकिक, पारलौकिक सुख तथा मोक्ष का प्रधान साधन है। जो लोग धार्मिक सामान्य, विशेष विवरण को नहीं जानते, उनके उद्धार का सहारा भगवन्नामस्मरण, भगवल्लीलाभूमिसंचरण, पुण्यायतनदर्शन, पूजन, और पुण्यतीर्थ स्नानादि ही हैं—महर्षिदेवलजी कहते हैं—"सर्वाः समुद्रगाः पुण्याः सर्वे पुण्यानगोत्तमाः। सर्वमायतनं पुण्यं सर्वे पुण्या वनाश्रयाः ॥ १ ॥ अभिगम्य च तीर्थानि, पुण्यान्यायतनानि च। नरः पापात्प्रमुच्येत ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ॥ २ ॥ अर्थ—समुद्र जाने वाली सभी नदियाँ, सभी पवित्रपर्वत, सभी पुण्यक्षेत्र और तपस्वियों के आश्रम, वन आदि पवित्र करनेवाले हैं। तीर्थ, पवित्रस्थानों में, तथा ब्राह्मणतपस्वियों के स्थानों में जाने से मनुष्य पाप से छूट जाते हैं।

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका, पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ ये सातो पुरी मोक्ष दायक हैं। इसी प्रकार भक्तवत्सल भगवान् चन्द्रशेखर कल्याणस्वरूप शंकरजी ने अपने भक्तों के दुःख निवारणार्थ द्वादश (१२) स्थानों में अपना स्वायंभु प्रादुर्भाव किया है। इन स्थानों में जाने का अपरिमित फल है जोकि संक्षेपरीति से प्रादुर्भाव वर्णन में वर्णित है। इन द्वादशज्योतिर्लिङ्गों की यात्रा तथा फल का वर्णन 'भारततीर्थ यात्रा' नामक पुस्तक में विशेष रूप

से मय संस्कृतग्रंथों के प्रमाणों के साथ देखना चाहिये। इस "द्वादश ज्योतिर्लिंग-यात्रा" नामक पुस्तक में सर्वसाधारण के लिये द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई, इसका वर्णन शिवपुराण के श्लोकानुसार ही क्रमशः है। वर्तमान समय में जिस तीर्थ की उपलब्धि जिस प्रकार है और वहाँ जिस प्रकार पूजादि करना चाहिये, वह यात्रा-क्रम के साथ वर्णित है। वर्तमानसमय में दमड़ी, चमड़ी के नितान्तदास नास्तिक उलूकगणों को अनुभवगम्यधर्म तथा तीर्थानुसरण आदि का फल प्रत्यक्ष हाथी, घोड़े सदृश उनकी आँखों के सामने न होने से यद्यपि वे ये सब कार्य व्यर्थ समझते हैं, और स्वयं नष्ट होते हुए दूसरों को भी नष्ट करने में शक्ति भर चेष्टा करते हैं। तथापि धार्मिकसज्जन जिनको प्रभु ने उत्तमबुद्धिप्रदान की है, और प्रभु की कृपाकोर में आगये हैं वे सत्कर्म, इन वेदवैनाशिकों के कथन पर नहीं त्याग सकते, पर सामान्य भोलीजनता पर अपनी नास्तिकता 'छू' मन्तर का प्रभाव अवश्य डालते हैं। यद्यपि नास्तिक कुतर्ककारियों को परलोक आदि सभी अदृष्ट वस्तुओं में संदेह ही रहता है, तथापि उनको भी सत्कर्म करना ही चाहिये। क्योंकि कहा है—"परलोके संदिग्धेऽपि त्याज्यमेवाऽशुभं नरैः। नास्ति चेत्तर्हि का हानिः, अस्ति चेन्नास्तिको हतः ॥१॥ परलोक संदेहास्पद होने पर भी अशुभ कर्म त्याग ही करना चाहिये। यदि परलोक नहीं है तो कोई हानि नहीं और यदि है तो नास्तिक मारा गया ॥ इस सिद्धान्त को लेकर सभी सज्जन शुभकर्मों का त्याग न करें और अपने कल्याणार्थ मनुष्यजीवन को सार्थक बनाने के लिये तीर्थयात्रादि अवश्य करें। यदि इस पुस्तक से हमारे तीर्थयात्री भाइयों को कुछ भी सहारा मिल सका तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। अलम्—

धार्मिकसज्जनों का एकमात्रकिङ्कर
प्रकाशक
पं० रामदुलारेद्विवेदी

द्वादशज्योतिर्लिङ्ग-सूची

संख्या तीर्थनाम	पृष्ठसंख्या तक
१—द्वादशज्योतिर्लिङ्ग नामानुकीर्तन	१—२
२—निष्कलज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव	२—१६
१—श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	१६—२६
२—श्रीमल्लिकार्जुनज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	२६—४०
३—श्रीमहाकालज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	४०—५३
४—श्रीॐकारनाथज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	५३—६३
५—श्रीकेदारनाथज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	६३—७१
६—श्रीभीमशंकरज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	७२—८१
७—श्रीकाशीविश्वनाथज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	८१—११२
८—श्रीत्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	११३—१२८
९—श्रीवैद्यनाथज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	१२८—१३६
१०—श्रीनागेशनाथज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	१३६—१४५
११—श्रीरामेश्वरनाथज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	१४५—१५६
१२—श्रीघुश्मेश्वरज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव-वर्णन	१५७—१६९

ॐ

द्वादशज्योतिर्लिङ्गयात्रा

द्वादशज्योतिर्लिङ्ग नामानि

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जैयिन्यां महाकालमोंकारपरमेश्वरम् ॥ १ ॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥ २ ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥ ३ ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाययः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो सर्वसिद्धिफलोभवेत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—सौराष्ट्र देश में श्री सोमनाथजी और श्री शैल पर्वत में श्री मल्लिकार्जुनजी, उज्जयिनी (अवन्तिका) पुरी में श्री महाकालजी और वहाँ से थोड़ी ही दूरी पर श्री ओंकारनाथजी द्विधा विभक्त होकर यानी श्री ओंकारनाथजी ही दो रूप से ओंकार और अमरेश्वर रूप में विराजमान हैं। इसका वर्णन पृथक् ज्योतिर्लिङ्ग विभाग में किया जायगा ॥ १ ॥ श्री केदारनाथजी हिमालय पर्वत

पर, डाकिनी देश अथवा डाकिनी वन में श्री भीमशङ्करजी, श्री वाराणसीपुरी में श्री विश्वनाथजी और गौतमी नदी के तट में श्री त्र्यम्बकेश्वरजी विराजमान हैं ॥ २ ॥ चिताभूमि जिसका वर्णन आगे किया जायगा वहाँ श्रीवैद्यनाथजी, दारुका वन में श्रीनागनाथजी; श्रीसेतुबन्ध में श्रीरामेश्वरजी और शिवालय तीर्थ पर श्रीघुश्मेश्वरजी विराजमान हैं ॥३॥ ये बारह (द्वादश) ज्योतिर्लिङ्गों के नाम प्रातःकाल उठकर जो पढ़ता है वह समस्त पापों से रहित होकर सर्व प्रकार की सिद्धि रूप फल को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

एक बार शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से पूँछा कि हे सूतजी मुक्ति के साधन क्या हैं? यह बात ऋषियों से सुनकर सूतजी प्रसन्न होकर बोले कि हे महर्षिगण! श्रवणादि त्रिक जो हैं वही मुक्ति के साधन हैं। अर्थात्—"श्रवणं कीर्तनं शम्भोर्मननं वेद सम्मतम्। त्रिकं च साधनं मुक्तौ शिवेन मम भाषितम्" ॥ १ ॥ अर्थात्—श्रीशङ्करजी के कथामृत का पान, उनके नाम एवं गुणानुवादों का कीर्तन करना और उनके स्वरूप का मन से ध्यान करना यही तीनों मुक्ति के साधन श्री शिवजी ने मुझे बताया है। महर्षिगण बोले कि हे सूतजी! यदि इन तीनों साधनों के करने में असमर्थ होवें तो किन कर्मों के करने से अनायास से मुक्ति प्राप्त हो सकती है! श्रीसूतजी बोले कि यदि उक्त साधनत्रय में अशक्त होवे तो नीचे लिखे प्रकार से लिङ्ग और वेर में श्री शङ्करजी की आराधना करे।

निष्कलज्योतिर्लिङ्ग प्रादुर्भाव

भाषार्थ—श्री सूतजी बोले कि हे महर्षियो! श्रवणादि जो तीन साधन शिवजी ने मुझे बताया है; यदि इन तीन साधनों के करने में असमर्थ होवे तो श्री शङ्करजी के लिंग और वेर इन दोनों विग्रहों को

स्थापन और पूजन करके संसार समुद्र को पार करे ॥१॥ शक्ति की चोरी न करता हुआ अपनी योग्यतानुसार हर एक प्रकार के द्रव्य (भोग के पदार्थ) लिंग और वेर विग्रहों को अर्पण करे और सदैव पूजन भी करे ॥ २ ॥ मण्डप, गोपुर, तीर्थ, शिवालय, क्षेत्र, वस्त्र, गन्ध, माला, धूप, दीप, नाना भाँति के नेवैद्य के पदार्थ और अपूप (मालपुवा) आदि से जनसमुदाय के सहित भक्तिपूर्वक उत्सव पूजन करे । छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर, आदि साङ्गोपाङ्ग राजा की भाँति लिंग और वेर विग्रहों के ऊपर धारण करे, प्रदक्षिणा, नमस्कार और यथाशक्ति जप करे ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ आवाहनादि क्रिया विसर्जन पर्यन्त सुन्दर भक्ति सहित करे; इस प्रकार लिंग, वेर विग्रह में देव देव श्री शङ्कर का पूजादि करता हुआ, उक्त तीनों साधनों में अशक्त होने पर भी श्री शङ्करजी की प्रसन्नता प्राप्त करके सिद्धि को प्राप्त कर केवल लिंग वेर की अर्चनामात्र से ही पूर्व में बहुत से लोग मुक्ति के भागी हुये हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ मुनिगणों ने सूतजी से पूँछा कि हे सूतजी ! केवल वेर विग्रह में सर्वत्र सब देवता पूजित होते हैं; और श्री शङ्करजी लिङ्ग और वेर इन दोनों प्रकारों से क्यों पूजित होते हैं ? ॥ ८ ॥ श्री सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! आप लोगों का यह प्रश्न अत्यन्त अद्भुत और परम पवित्र है । इस प्रश्न का उत्तर देनेवाला भूमि में कोई कहीं नहीं है; इसके वक्ता साक्षात् शिवजी हैं ॥ ९ ॥ इसलिये इस विषय में शिवजी ने ही जो कुछ कहा है; और वह मुझे गुरुपरम्परा से श्रुत है वही मैं कहूँगा । केवल शिवजी ही ब्रह्म स्वरूप होनेके कारण निष्कल (कला रहित) कहे गये हैं ॥ १० ॥ स्वरूपधारी होने के कारण उसी प्रकार सकल (कला सहित) भी हैं इसलिये श्री शङ्करजी सकल और निष्कल दोनों रूप में हैं निष्कल होने के कारण उनका ज्योतिर्मय निराकार लिंग

प्रकट हुआ था ॥ ११ ॥ और सकल होने के कारण उसी प्रकार से उनका वेर (साकार) रूप भी प्रकट हुआ, सकल, निष्कल दोनों ही रूप से होने के कारण ब्रह्मस्वरूप और श्रीशङ्कर आदि शब्द वाच्य हुये ॥ १२ ॥ इसीलिये लिंग* और वेर† इन दोनों प्रकार से श्रीशङ्करजी सदा मनुष्यों से पूजित होते हैं। अन्य देवगणों को ब्रह्मांश होने के कारण अर्थात् साक्षात् पर ब्रह्म न होने के कारण कहीं भी कला राहित्य नहीं है अर्थात् वे देवगण सदा सकल (कला सहित) ही हैं ॥ १३ ॥ इसी कारण से देवगण निष्कल लिङ्ग में पूजित नहीं होते; क्योंकि वे साक्षात् ब्रह्म स्वरूप से आविर्भूत नहीं हुये किन्तु जीव रूप से ही हैं ॥ १४ ॥ श्रीशङ्करजी से भिन्न जितने देवगण हैं वे सब जीव स्वरूप हैं; ब्रह्मस्वरूप केवल श्रीशङ्करजी ही हैं इसी कारण सकल होने से वे सब वेर विग्रह (सकल मूर्ति)में ही शान्तभाव से पूजित होते हैं ॥ १५ ॥ वेदान्त वाक्यों से सिद्ध प्रणव वाच्य केवल श्रीशङ्करजी ही हैं; इसी बात को हे मुनिगणों ! पहिले बड़े ही बुद्धिमान ब्रह्माजी के पुत्र श्रीसनत्कुमारजी ने मन्दराचल पर्वत के ऊपर श्रीनन्दिकेश्वरजी से पूँछा था ॥ १६ ॥ श्रीसनत्कुमारजी बोले कि शिवजी से अन्य वशीभूत जो देवगण हैं उन सबों का सभी प्रकार अच्छी तरह से केवल वेर मात्र ही पूजा के लिये देखा गया, और सुना गया है, और श्रीशिवजी की पूजा में लिङ्ग और वेर ये दोनों विग्रह दिखाई देते हैं ॥ १८ ॥ इसलिये हे कल्याण स्वरूप श्रीनन्दिकेश्वरजी यह उत्तम तत्त्व बोध देनेवाला

---

* लिङ्गे (निराकार रूपे) अर्थात् निराकार ब्रह्म स्वरूप होने से लिंग में पूजित होते हैं।

† वेरे (साकार स्वरूपे) अर्थात् सगुण होने से साकार रूप में भी पूजित होते हैं।

हमसे कहिये। श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे सनत्कुमार! यह तुम्हारा प्रश्न अति उत्तम ब्रह्मस्वरूप ही है॥ १९॥ हे पाप-रहित! श्रीशिवजी से कहा हुआ यह रहस्य, भक्ति युक्त तुम्हारे लिये कहते हैं। श्रीशिवजी को ब्रह्मस्वरूप और कलातीत होने के कारण सर्व वेदों में पूजा के लिये लिङ्ग माना गया है; और सगुण होने के कारण वेर (सगुण) विग्रह वेदों से सम्मत है। इसीलिये श्रीशङ्करजी सकल, निष्कल दोनों ही रूप में लोक पूजित हैं और श्रीशिवजी से अन्य देवों को जीव, और सगुण होने के कारण सब प्रकार से वेर (सगुण) रूप ही में पूजा वेद सम्मत है; क्योंकि देवों की स्वोत्पत्तिमें सगुण ही रूप सम्मत है॥ २०॥ २१॥ २२॥ ॥ २३॥ और श्रीशिवजी का लिङ्ग और वेर दोनों देखा गया है। श्रीसनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग्य-शील श्रीनन्दिकेश्वरजी! आपने श्रीशिवजी के लिङ्ग और वेर का प्रचार और शिव भिन्न देवों का केवल वेर मात्र का प्रचार विभाग करके यथार्थरूप से कहा; इसी कारण वेर विग्रह का आदि-कारण लिङ्ग है और परमश्रेष्ठ है॥ २५॥ अब हम आपसे यह सुनना चाहते हैं कि जिस प्रकार लिङ्गस्वरूप का आविर्भाव हुआ है। श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे वत्स! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये इसको यथार्थ रूप से कहते हैं॥ २६॥ पहिले जब महाकाल कल्प प्राप्त हुआ, तब परस्पर श्रीब्रह्माजी और श्रीविष्णुदेव ने युद्ध किया था॥ २७॥ तब इन दोनों के गर्व को दूर करने के लिये श्रीशिवजी ने उन दोनों के युद्ध के मध्य स्थान में एक विशाल स्तम्भ के समान अपना कलारहित ब्रह्म स्वरूप प्रकट किया॥ २८॥ इसके अनन्तर जगत् के हितार्थ अपने लिङ्ग के चिह्न वाला होने के कारण कलातीत श्रीशिवजी ने उसी निष्कल स्तम्भ से अपने लिङ्ग को प्रकट किया॥ २९॥ तभी से सभी लोकों में परमेश्वर श्रीशिवजी के निष्कल (लिङ्ग)

और सकल (वेर) ये दोनों ही रूप कल्पित हुये ॥ ३० ॥ और श्रीशिवजी से अन्य देवों की कल्पना केवल वेर (सगुण) रूप ही में हुई। देवताओं का वह वेर विग्रह यथानुरूप भोगों का देने वाला होता है और श्रीशङ्करजी का लिङ्ग और वेर विग्रह भोग और मोक्ष इन दोनों को देनेवाला है ॥ ३१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले, कि हे सनत्कुमारजी ! पहिले किसी समय शेषशायी भगवान् विष्णु अपने पार्षदों सहित परमऐश्वर्य युक्त सोये थे ॥ १ ॥ उसी समय अकस्मात् ब्रह्म (वेद) जानने वालों में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी आ पहुँचे, और सर्वाङ्ग सुन्दर शयन किये हुये कमलनेत्र भगवान् विष्णु से पूँछा ॥ २ ॥ कि हमको देखकर घमण्डी पुरुष के सदृश कौन तुम सोये हो। हे वत्स ! (हे बच्चे !) उठो और तुम्हारे स्वामी आये हुये मुझे देखो ॥ ३ ॥ आये हुये गुरु की सेवा पूजा न करके देखकर भी जो गर्विष्ठ के ऐसा आचरण करता है; उस मूढ़ गुरुद्रोही को प्रायश्चित करना चाहिये ॥ ४ ॥ ऐसा ब्रह्माजी का वचन सुनकर विष्णु भगवान् बाहर से शान्त के जैसा आचरण करते हुये भीतर से क्रुद्ध हुये बोले कि हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हारा अच्छा आगमन हुआ आसन पर बैठ जावो ॥ ५ ॥ और तुम्हारा मुखारविन्द भृकुटी चढ़ी हुई हैं जिसमें, ऐसा व्यग्र के जैसा क्यों ज्ञात हो रहा है। श्रीब्रह्माजी बोले कि हे वत्स विष्णो ! समय के प्रभाव से महामाननीय हम आये हुये हैं; हे वत्स ! हम जगत् के पितामह हैं और तुम्हारे भी रक्षक हैं। भगवान् श्रीविष्णुदेव बोले कि यह जगत् हमारे में स्थित है तुम चोर के सदृश अपना समझते हो ॥ ६ ॥ ७ ॥ हमारे नाभिकमल से तुम उत्पन्न हुये हो हे पुत्र ! तुम व्यर्थ भाषण करते हो। श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले—अजन्मा मोहित हुये इस प्रकार

बोलते हुये वे दोनों देव हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं तुम नहीं हो हम ही समर्थ हैं तुम नहीं हो; परस्पर एक दूसरे को हनन करने की इच्छा से युद्ध का उद्योग किया ॥ ९ ॥ और गरुड़वाहन भगवान् विष्णु; हंस वाहन ब्रह्माजी युद्ध करने लगे। ब्रह्माजी के पार्षद और विष्णुजी के पार्षद भी आपस में लड़ने लगे ॥ १० ॥ उसी समय यह महाअद्भुत युद्ध देखने की इच्छा से सर्वदेवगण विमानों द्वारा आ गये ॥ ११ ॥ देवगण फूलों की वर्षा करते थे और यथेष्ट आकाश में घूमकर देखते थे। तव भगवान् विष्णुदेवजी ने क्रुद्ध होकर ब्रह्माजी की छाती में असह्य वहुत से अस्त्र तरह-तरह के वाण मारे। ब्रह्माजी ने भी क्रोधित होकर विष्णु भगवान् की छाती में बड़े दुःसह अग्नि के सदृश बहुत से अस्त्र वाणादिक छोड़े उन दोनों के युद्ध विषय में उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ ॥१२–१४॥ देवगण यह देखकर अत्यन्त व्याकुल हुये। तव दुःख से पीड़ित ऊँची स्वाँस लेते हुये भगवान् विष्णुजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर ॥ १५ ॥ महेश्वरास्त्र को ब्रह्माजी के ऊपर संधान किया। तब ब्रह्माजी अत्यन्त क्रुद्ध हुये संसार को कम्पित करते हुये; वड़ा ही भयंकर पशुपति अस्त्र को विष्णु भगवान् की छाती में संधान किया तब वह अस्त्र हजारों सूर्य के सदृश आकाश में उठा ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह वाण हजार मुख वाला था और अत्यन्त उग्र प्रचण्ड वायु युक्त भयंकर था; अर्थात् वे दोनों ही ब्रह्मा विष्णु के अस्त्र बड़े भयंकर थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार से ब्रह्माजी का और विष्णु भगवान् का परस्पर जब बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा, तव देवगण अत्यन्त खिन्न और व्याकुल हुये ॥ १९ ॥ और राष्ट्रविप्लव के समय में प्रजागण जैसे दीन वचन कहते हैं उसी प्रकार कहने लगे कि उत्पत्ति, स्थिति और लय (लुप्त होना) और अनुग्रह (कृपा) जिससे ये सब होते हैं उस त्रिशूलधारी ब्रह्मस्वरूप के लिये नमस्कार है। जिसकी कृपा के बिना अपनी इच्छा से

कहीं पर भी एक तृणमात्र का भी नाश अन्योंके द्वारा अशक्य है उसके लिये नमस्कार है ॥ २० ॥ २१ ॥ इस प्रकार देवता लोग कल्याण का नाश उपस्थित देख विचार करते हुये जहाँ भगवान् शंकरजी ललाट में चन्द्रमा धारण किये हुये विराजमान थे ऐसे कैलाश के शिखर पर गये ॥२२॥ परमेश्वर के उस स्थान को देख कर देवता लोग बहुत प्रसन्न हुये और ॐकारस्वरूप भगवान् शिवजी को प्रणाम कर उस गृह में प्रविष्ट हुये ॥२३॥ उन देवताओं ने वहाँ मणियों से जटित मण्डप में सभा के मध्य भाग में श्रीपार्वतीजी के साथ विराजमान सर्वदेवों में श्रेष्ठ भगवान् शङ्करजी को देखा ॥२४॥ शंकरजी वामपाद के ऊपर दाहिने पैर को चढ़ाये हुये उसमें कर-कमल को रखे हुये अपने गणों से सेवित सर्व लक्षणों से विशिष्ट अतिचतुर स्त्री गणों द्वारा जो अत्यन्त भगवान् की भावना में लीन थीं चमर छत्र द्वारा वीजित थे, चारो वेद गुणानुवाद गा रहे थे ऐसे सब के ऊपर दया विस्तार करनेवाले परमेश्वर को देख देवगण आनन्दयुक्त संतोष से पूर्ण हुये आँखों में जल युक्त हुये । श्रीनन्दि-केश्वरजी बोले कि हे वत्स सनत्कुमार ! दूर से ही दण्डवत् प्रणाम उन देवतावों के समूह ने किया ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर देव देव श्रीशंकरजी ने सब देवताओं को देखकर अपने गणों द्वारा समीप बुलाया और गम्भीरार्थ युक्त मङ्गलमय मधुर वचन बोले ॥ २८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भगवान् शिवजी बोले कि हे वत्स देवगण ! आप लोगों का कल्याण तो है । हमारी आज्ञा से संसार और देववंश अपने अपने कर्म में तत्पर है या नहीं ? ॥१॥ हे देवगण ! ब्रह्मा और विष्णु के युद्ध का वृत्तान्त पहिले ही से मुझे ज्ञात है; आप लोगों को संताप है इसलिये पुनः कह दिया है ॥ २ ॥ श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे

सनत्कुमारजी ! इस प्रकार अमृतमयी मन्द मुसुकुरान से युक्त बोली से भवानीपति श्रीशङ्करजी ने उस देव समूह को संतोष दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर भगवान् शङ्करजी ने उसी सभा मध्यमें ही ब्रह्मा विष्णु के युद्धस्थल में चलने के लिये एक शतगण नायकों को आज्ञा दिया ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर परमेश्वर के युद्धयात्रार्थं तरह तरह के बाजा बजने लगे और गणेश्वर लोग नाना भाँति के भूषण पहिन नाना भांति के वाहनों पर चढ़कर तैयार हो गये ॥ ५ ॥ श्री अम्बिकापति भगवान् शङ्करजी ॐकार के सदृश, आदि, अन्तयुक्त पाँच मण्डलों से सुशोभित कल्याणमय रथ पर चढ़े। श्रीशङ्करजी के पुत्र कार्तिकेय, गणेशजी और गण इन सबोंके साथ इन्द्रादि देवगण भी पीछे पीछे चले ॥ ६ ॥ चित्र-विचित्र ध्वजा, व्यजन, चामर, पुष्पवृष्टि, सङ्गीत, नृत्य और भांति भांति के वाद्यों से सम्मानयुक्त भगवान् श्रीशिवजी पराशक्ति भगवतीजी के साथ श्रीब्रह्माजी और श्रीविष्णुजी के युद्ध स्थल में सैन्य सहित गये ॥ ७ ॥ और वहाँ बाजों के शब्द और गणों के प्रचण्ड कलकल को समाप्त करके उन दोनों के युद्ध को देखकर गगन घनों में छिपकर स्थित हुये ॥८॥ इसके अनन्तर श्रीब्रह्माजी और भगवान् विष्णु जो परस्पर एक दूसरे को हनन करने की इच्छा से माहेश्वरास्त्र और पाशुपतास्त्र से युद्ध करते थे देखा ॥ ९ ॥ उन दोनों की अस्त्र-ज्वाला से त्रैलोक्य जलता हुआ देख और विना समय के ही महा-प्रलय हो जायगा यह समझ भगवान् शंकर महाप्रचण्ड अग्निमय भयंकर आकार से उन दोनों के युद्ध के मध्य में निष्कल स्वरूप से अवस्थित हो गये ॥ १० ॥ ११ ॥ ज्वालाओं के सहित वे अस्त्र भी जो लोकों के संहार करने में समर्थ थे एक क्षणमात्र में ही प्रकट हुये भये उस महाअग्नि स्तम्भ में लीन हो गये ॥१२॥ यह अद्भुत अस्त्र शांति करनेवाला परमशुभ, विचित्र स्तम्भाकार देख, यह अद्भुताकार

वाला क्या है इस प्रकार श्रीब्रह्माजी श्रीविष्णुजी कहने लगे ॥ १३ ॥ इन्द्रियों से परे अग्निस्तम्भरूप से उठा, यह क्या है? इसका ऊर्ध्व (ऊपर) और नीचे यह कहाँ तक है इसका पता हम लोगों को लगाना चाहिये ॥१४॥ ऐसा निश्चयकर अपने को महाबीर माननेवाले श्री ब्रह्मा और श्रीविष्णुजी दोनों मिलकर बड़ी शीघ्रता से उस निष्कल महाअग्निमय स्तम्भ की परीक्षा करने को चल दिये ॥ १५ ॥ हम दोनों को साथ ही रहकर एक ही कार्य करने से ठीक नहीं है ऐसा कहकर भगवान् श्रीविष्णुदेव सूकर शरीर धारण कर उस स्तम्भ के आदि का पता लगाने के लिये नीचे चले ॥१६॥ और श्रीब्रह्माजी ने हंस शरीर धारण कर उस स्तम्भ के अन्त का पता लगाने के लिये ऊपर प्रस्थान किया। पाताल पर्यन्त भेदन कर अत्यन्त दूर भी जाकर उस अग्निमय स्तम्भ का आदि कहाँ है यह जब न देखा, तब सूकर शरीरधारी भगवान् विष्णु थक कर अपने रणस्थल में लौट आये ॥ १७ ॥ १८ ॥ श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे तात सनत्कुमारजी! तुम्हारे पिता श्रीब्रह्माजी आकाश मार्ग से जाते हुये बहुत दूर जाने पर बड़ा ही अद्भुत गिरा हुआ किसी केतकी के फूल को देखा ॥ १९ ॥ वह फूल बिल्कुल नया मुरझाया हुआ न था और वह बहुत वर्षों से गिरा हुआ था। श्रीब्रह्मा और श्रीविष्णुजी का यह कृत्य देखकर परमेश्वर श्रीशंकरजी ने जब हँसी की, तब शिर कम्पित होने से उन दोनों के ऊपर कृपा करने के लिये वह परमोत्तम केतकी पुष्प गिरा था ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे पुष्पों में श्रेष्ठ! तुम क्यों गिर रहे हो? किसने तुमको धारण किया था। तब वह पुष्प बोला कि इस स्तम्भ का आदि तो हम नहीं जानते क्योंकि यह अप्रमेय है इस स्तम्भ के मध्य से बहुत काल से हम गिरे हैं ॥ २२ ॥ हंस का स्वरूप धारण करके इस स्तम्भ का अन्त जानने की इच्छा से जो तुम आये हो इस आशा को छोड़ दो

॥२३॥ तब श्रीब्रह्माजी बोले—हे मित्र ! अब तुम हमारा मनोरथ पूर्ण करो और हमारे साथ चलकर विष्णु के समीप यह कह दो कि श्रीब्रह्माजी ने इस स्तम्भ के अन्त का पता लगा लिया है इसमें हम साक्षी हैं ऐसा कहकर उस केतकी पुष्प को श्रीब्रह्माजी ने बार बार प्रणाम किया, आपत्ति काल में असत्य भाषण भी प्रशस्त होता है ऐसी शास्त्र आज्ञा है ऐसा श्रीब्रह्माजी ने केतक को समझाया ॥ २४ ॥ २५ ॥ और उस केतक पुष्प को साथ लेकर अपने रण स्थल में आये तो वहाँ भगवान् को थका हुआ प्रसन्नता से रहित देख ब्रह्माजी हर्ष से नाचने लगे, और सत्यतापर स्थित श्रीभगवान् से ब्रह्माजी जो पाखण्ड रचना में तत्पर थे मिथ्या पाखण्डयुक्त बातें कहीं ॥ २६ ॥ और बोले कि हे विष्णो ! इस स्तम्भ के अन्त का पता हमने लगा लिया है इसमें साक्षी यह केतकी का पुष्प है । तब उस केतकी के पुष्प ने भी भगवान् विष्णु के समीप ब्रह्माजी ने जैसा कहा था वैसे ही झूठ बोल दिया ॥ २७ ॥ भगवान् विष्णुजी उस ब्रह्माजी के कहे हुये वाक्य को सत्य ही समझते हुये स्वयं ब्रह्माजी के लिये नमस्कार किया; और षोड़श पूजा के उपचारों से श्रीब्रह्माजी का पूजन किया ॥ २८ ॥ इस प्रकार अन्याय कार्य देखकर दुष्ट ब्रह्माजी को प्रहार करने के लिए उस अग्निमय स्तम्भरूप लिंग से परमेश्वर आकृति (स्वरूप) धारण कर प्रकट हो गये । भगवान् विष्णु स्वामी को देखते ही उठ खड़े हुये और कम्पित हस्त उनके चरणों को पकड़ कर स्तुति करने लगे कि हे प्रभो ! आदि अन्त से रहित जो आपका शरीर है उसका परामर्श जो हम दोनों ने किया वह मोहबुद्धियुक्त अत्यन्त कामना से किया; इस लिये हे दयालो ! आप प्रसन्न हो कर हम लोगों के दोष को सहन करते हुये क्षमा करो, यह आपने ही क्रीड़ा की इच्छा से किया है ॥ २९ ॥ ३० ॥ तब परमेश्वर श्रीशिवजी बोले कि हे वत्स विष्णो ! हम आप

से इस लिये प्रसन्न हैं कि आप ईश्वरत्व की इच्छा करते हुये भी सत्यवाक्य बोले हैं। इस लिये आपकी सेवा, पूजा, सत्कारादि-मनुष्यों में हमारे ही सदृश होगा, अर्थात् आप हमारी समता को लाभ करेंगे ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर अब आप हम से अपृथक् स्वरूप होते हुये क्षेत्र (तीर्थादि) उत्सव और पूजादि में हमारे सदृश ही पूजित होंगे। श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे सनत्कुमार-जी ! इस प्रकार देव देव श्रीशिव जी प्रथम भगवान् विष्णु की सत्यता से प्रसन्न हो सर्व देवताओं के समक्ष में अत्यन्त अपनी समता का पद दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे सनत्कुमारजी, इसके अनन्तर श्रीमहादेव भगवान् शङ्करजी ने ब्रह्माजी का घमण्ड नष्ट करने के लिये अपनी भृकुटी के मध्य से एक महाअद्भुत भैरव नामक पुरुष उत्पन्न किया ॥ १ ॥ वह पुरुष रणाङ्गण में विराजमान भगवान् शिवजी को प्रणाम कर बोला कि प्रभो ! आप शीघ्र आज्ञा दीजिये क्या आपका कार्य है वह हम करें ॥ २ ॥ तब भगवान् श्रीशङ्करजी उस पुरुष से बोले कि जगत्का आदि देवता जो यह ब्रह्मा है; इसकी पूजा परम तीक्ष्ण खड्ग (तलवार) द्वारा तुम करो ॥ ३ ॥ तब उस भैरवाख्य पुरुष ने अपने एक हाथ से ब्रह्माजी के केशों को पकड़ कर गर्व से युक्त असत्य बोलनेवाले ब्रह्माजी के पाँचवें मस्तक को काट गिराया और अपने हाथों से अत्यन्त तीव्र तलवार को घुमाते हुए ब्रह्माजी के और भी मस्तक काटने के लिए उद्यत हुआ ॥ ४ ॥ श्रीनन्दिकेश्वरजी बोले कि हे सनत्कुमारजी तब तुम्हारे पिता ब्रह्माजी आभूषण, माला, ऊपर का वस्त्र, और स्वच्छ केशों से रहित हो, जिस प्रकार वायु चलने पर कदली का वृक्ष कम्पित होता है उसी प्रकार काँपते हुये उस महाभयङ्कर पुरुष के चरणों में गिर पड़े ॥५॥

हे तात सनत्कुमारजी ! उसी समय परम कृपालु भगवान् विष्णु-देव ब्रह्माजी को जीवित देखने की इच्छा से हमारे स्वामीके चरण कमलों को अपने नेत्र जल से सींचते हुये हाथ जोड़कर जिस प्रकार एक बालक अपने पिता से मधुर वचन बोलता है उसी प्रकार बोले ॥६॥ भगवान् श्रीविष्णुदेव बोले—हे स्वामिन् ! प्रथम प्रसन्न हुये आपने ही इन ब्रह्माजी को पाँच मुख वाला यह चिन्ह दिया है, इसलिये इनके ऊपर कृपा करते हुये दया के योग्य इनके अपराधों को क्षमा करो ॥ ७ ॥ भगवान् विष्णुदेव की इस प्रकार प्रार्थना सुन देव समूह के समक्ष भगवान् शिवजी सन्तुष्ट हो, ब्रह्माजी को दण्ड देने में उद्यत उस भैरव को रोक दिया ॥ ८ ॥ और एक मस्तक से हीन धूर्त ब्रह्माजी से बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम अपनी पूजा प्रतिष्ठा की आकांक्षा से इस प्रकार की जो शठता धारण किया इसलिये संसार में आजसे, तीर्थादि स्थान और उत्सवादिकों में तुम्हारा सत्कार न होगा। श्रीब्रह्माजी बोले कि महाऐश्वर्य युक्त हे स्वामिन् ! आप प्रसन्न हो जाओ। आपने यह जो हमारा मस्तक काट दिया है; इसको हम आपका वर ही समझते हैं ॥१०॥ संसार के आदि-कारण, विश्व के बन्धु, सर्व दोषों को सहन करने वाले, मन्दराचल को धनुष रूप से धारण करने वाले हे भगवन् ! आपके चरणों में हमारा नमस्कार है ॥ ११ ॥ ईश्वर भगवान् शिवजी बोले कि हे ब्रह्माजी ! विना राज-भय के सर्व जगत् नष्ट हो जाता है इसलिये दण्ड योग्य इस पञ्चम मस्तक का त्याग करो, और हे पुत्र ! लोक की धुरा को धारण करो ॥ १२ ॥ अब हम तुमको श्रेष्ठ, अति दुर्लभ वर देते हैं उसे ग्रहण करो, मण्डपादि से युक्त श्रौतस्मार्त यज्ञों में आज से तुम गुरु होगे। दक्षिणादि सहित साङ्गोपाङ्ग यज्ञ भी तुम्हारे बिना निष्फल होगा। यह वर-दान ब्रह्माजी को देकर भगवान् श्रीशिवजी मिथ्या साक्षी धूर्त

केतकपुष्प से बोले ॥ १३ ॥ १४ ॥ कि रे दुष्ट केतक यहाँ से तुम दूर हो जा, अब इसके अनन्तर तेरे पुष्प में मेरा प्रेम न होगा। जब इस प्रकार भगवान् श्रीशङ्करजी ने केतक को कहा तब जितने देवगण थे सब लोगों ने उस केतक को श्रीशङ्करजी के समीप से अन्यत्र हटा दिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ केतक बोला कि हे नाथ! आपकी आज्ञा से हमारा जन्म ही संसार में निष्फल हो गया, इसलिये हे तात हमारे दोष को क्षमा करो और हमारा जन्म सफल करो आपके लिये बार बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे स्वामिन्! आपका स्मरण ही जान, और अनजान से हुये पापों को नाश करता है इसलिये हे स्वामिन्! आपका प्रत्यक्ष दर्शन होते हुये मुझे मिथ्या का दोष कैसे हो सकता है ॥ १८ ॥ सभास्थल में भगवान् जब इस प्रकार केतक द्वारा स्तुत हुये, तब भगवान् श्रीशिवजी बोले कि तुझे धारण करना अब मुझे योग्य नहीं है क्योंकि हम ईश्वर हैं हमारी वाणी अन्यथा नहीं होती ॥ १९ ॥ हमारे भक्तगण आदि तुझे धारण करेंगे इससे तेरा जन्म सफल हो जायगा। और मण्डप के द्वारा (मण्डप आदि में लगाने से) तुम हमारे ऊपर भी हो सकेगा ॥ २० ॥ इस प्रकार हे सनत्कुमारजी! सब देवताओं से स्तुति किये गये श्रीभगवान् शङ्करजी केतक; ब्रह्माजी और माधवजी के ऊपर अनुग्रह करके सभा मध्य में विराजमान हुये ॥ २१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्माजी और विष्णु भगवान् अपने स्वामी को नमस्कार कर हाथ जोड़े हुये शान्त भाव से दक्षिण और वाम भाग में स्थित हो गये ॥ १ ॥ और कुटुम्ब के सहित देव देव भगवान् शिवजी को श्रेष्ठ आसन पर बैठा कर उत्तम उत्तम पवित्र पुरुष लभ्य वस्तुओं द्वारा परम पूज्य भगवान् शिवजी की पूजा

किया ॥ २ ॥ भगवान् शिवजी बोले—हे वत्सो ! हम तुम लोगों के ऊपर प्रसन्न हुये हैं; इस महादिन में हमारा पूजन करो; यह दिन बड़ा ही पवित्र और महान् से महान् माना जायगा ॥ ३ ॥ और यह तिथि "शिवरात्रि" नाम से प्रसिद्ध हो, मुझे अति प्रिय होगी। इस समय हमारे लिङ्ग (निष्कल) वेर (सकल) इन दोनों रूपों का जो कोई पूजन करेगा वह जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के सम्पूर्ण कृत्यों को कर चुका, इस तुम लोगों के रणस्थल में हम लिङ्ग रूप से प्रकट हुये हैं; इसलिये यह स्थान लिङ्गों का स्थान होगा। और हे पुत्रो ! जगत् के दर्शन और पूजा के लिये अनादि, अनन्त यह स्तम्भ अब छोटा होकर रहेगा। अग्निमय पर्वत के सदृश जो यह लिङ्ग प्रकट हुआ इसलिये आज से यह अरुणाचल के नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ हे पुत्रो ! पहिले हम स्तम्भ रूप से और उसके अनन्तर सगुण रूप से प्रकट हुये इसलिये निष्कल लिङ्ग हमारा ब्रह्मस्वरूप और सकल ईश्वर स्वरूप समझना चाहिये; ये दोनों स्वरूप हमारे ही हैं और किसी देवता के नहीं हैं ॥ ९ ॥ इसलिये अन्य देवताओं के सदृश तुम दोनों का भी ईशत्व कहीं नहीं है। प्रथम ब्रह्मस्वरूप के द्योतनार्थ लिङ्ग प्रादुर्भाव हुआ, पर किसी से जाना नहीं गया इसलिये स्वकीय ईश्वरत्व स्पष्ट सूचनार्थ तुम लोगों के लिये हम सकल (सगुण) विग्रह वाले हो गये ॥ १० ॥ ११ ॥ यह जो निष्कल स्तम्भ है वह हमारे ब्रह्मत्व (ब्रह्म स्वरूप) का बोधक लिङ्ग के लक्षणों से युक्त होने के कारण लिङ्ग रूप से प्रसिद्ध होगा। हे पुत्रो ! यह तुम दोनों को सदैव पूजन योग्य है; जिस पुरुष ने जहाँ पर हमारे इस प्रकार के लिङ्ग की प्रतिष्ठा किया, वहाँ हम हे पुत्रो ! विना प्रतिष्ठा के भी प्रतिष्ठित होंगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ प्रधान रूप से हमारा लिङ्ग ही स्थापन करना चाहिये। वेर (सगुण

विग्रह) गौण रूप से हैं; लिङ्गाभाव में सर्वत्र वेर भी स्थापन कर सकते हैं और वह क्षेत्र समझना चाहिये ॥ १५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीसोमनाथ (सोमेश्वर) ज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव

ऋषि लोग बोले, कि हे सूत जी ! अब आप कृपा करके ज्योतिर्लिङ्गों की उत्पत्ति और माहात्म्य जैसा आप ने सुना है, कहिये ॥१॥ सूतजी बोले कि हमने जैसा श्रवण किया है वह सब अपनी बुद्धि के अनुसार कहेंगे पर वास्तव में तो ज्योतिर्लिङ्गों का माहात्म्य सैकड़ों वर्ष तक कहा जाय तो भी थोड़ा ही रहेगा ॥ २ ॥ हे मुनीश्वरो ! यद्यपि हम कहने में असमर्थ हैं पर तब भी आप लोगों के हितार्थ कुछ कहते हैं ब्रह्मा के पुत्र प्रजापतिदक्ष के सत्ताइस अश्वनी आदि कन्यायें थीं। वे सभी चन्द्रमा के साथ विवाहित हुईं और अति सुन्दर चन्द्रमा को स्वामी प्राप्त कर वे सब अत्यन्त सुशोभित हुईं ॥ ३ ॥ ४ ॥ चन्द्रमा भी उन कन्याओं से सदा इस प्रकार सुशोभित होते थे जैसे सुवर्ण (सोने) से मणि और मणि से सोना सुशोभित होता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार किसी समय जैसा हुआ वह सुनो। उन सबों में चन्द्रमा को एक ही स्त्री रोहिणी नामक जिस प्रकार सर्वाधिक प्रिय हुई उस प्रकार अन्य स्त्रियाँ कभी भी न हुईं; तब अन्य वे सब दुःख से युक्त हो, पिता दक्ष प्रजापति की शरण में गईं ॥ ६ ॥ ७ ॥ और उन्होंने अपना दुःख जो था वह कह सुनाया दक्षजी यह सुनकर बड़े दुःखी हुये ॥ ८ ॥ दक्ष प्रजापति ने स्वयं चन्द्रमा के पास जाकर उसको समझाया कि हे कलानिधि (चन्द्र) तुम एक विमल वंश में उत्पन्न

हुये हो; जो तुम्हारे आधीन हैं उन सबों में न्यून और अधिक का भाव न होना चाहिये। आज से अपनी सभी स्त्रियों में न्यून अधिक भाव नहीं रखना ॥ ९ ॥ १० ॥ प्रजापति दक्षजी स्वयं इस प्रकार अपने जामाता चन्द्रमा को समझा कर, अब चन्द्रमा सबों को बराबर समझेगा ऐसा निश्चय कर वे अपने स्थान लौट गये ॥ ११ ॥ चन्द्रमा भी विमोहित हो दक्षजी का वचन न मान सके, क्योंकि जिसका भावि जैसा होता है वैसा ही वह शुभाशुभ करता है। जब भविष्य समुज्वल नहीं होता तब उसका शुभ भी नहीं होता; तदनुसार बलवान् भावि वश चन्द्रमा ने दक्षजी का वचन न माना ॥ १२ ॥ १३ ॥ और वे रोहिणी में ही अत्यन्त आसक्त हुये और अपनी दूसरी स्त्रियों को कभी भी न माना। तब दक्ष प्रजापति फिर बड़े दुःख से युक्त होकर आये ॥ १४ ॥ और बोले कि हमने तुमसे पहिले बहुत प्रकार प्रार्थना किया, पर तुमने हमारा वचन न माना इस लिये तुम क्षयी (क्षय रोगवाले) हो जाओ ॥१५॥ इस प्रकार दक्ष प्रजापति के शाप देने पर चन्द्रमा उसी क्षण क्षयरोग से युक्त हो गये और क्या करें कहाँ जाँय बड़े ही दुःखी हुये ॥ १६ ॥ जब चन्द्रमा क्षीणता को प्राप्त हो गये तब सभी लोकों में हाहाकार मच गया, देवगण, प्राचीन ऋषिगण, गन्धर्व और अप्सरागण बड़े दुःखी हुये और अब क्या करना चाहिये बड़ा ही कष्ट है ऐसा विचार करने लगे। तब दुःखयुक्त इन्द्रादि देवताओं को चन्द्रमा ने श्री ब्रह्माजी की शरण जाने को कहा। तब वे सब देवगण श्री ब्रह्माजी के पास जाकर चन्द्रमा का सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। श्री ब्रह्माजी भी सुनकर सोच करने लगे कि आश्चर्य है कि ऐसा दुष्टकार्य क्यों हुआ ॥ १७—२० ॥ और बोले कि चंद्रमा तो सदा से ही दुष्ट है पर दक्ष ने ऐसा क्यों किया। इस चन्द्र ने पहिले भी बहुत से दुष्टता के कार्य किये हैं ॥ २१ ॥ हे देवऋषि-

गणो ! चन्द्रमा के प्राचीन दुष्ट कार्यों को सुनो। इसने अपने गुरु बृहस्पति के घर जाकर उनकी स्त्री तारा को पहिले हरण किया ॥ २२ ॥ तारा को हरण करके और दैत्यों से मेल कर देवताओं से स्पर्धा रखता हुआ युद्ध करने को भी तैयार हो गया ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि तब हम और इसके पिता अत्रि प्रजापति ने निषेध किया तब वड़ी कठिनता से इसने तारा को लौटाया, बृहस्पतिजी ने तारा को गर्भवती जान ग्रहण नहीं किया, तब हमने बहुत वारण किया कि ऐसा न करो। तब यह निश्चय हुआ कि यदि यह गर्भ त्याग देगी तो ग्रहण करना चाहिये। पूँछने पर यह ज्ञात हुआ कि वह गर्भ चन्द्रमा का ही था, हे ऋषिगणो ! इस प्रकार जब तारा ने गर्भ त्याग दिया और गर्भ से रहित हो शुद्ध हुई तब बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर बृहस्पति ने उसे ग्रहण किया। इस प्रकार चन्द्रमा के चरित्र अनेक हैं ॥ २४—२७ ॥ कहाँ तक उन सबों को कहें; अस्तु जो हुआ सो तो हुआ ही वह अन्यथा नहीं हो सकता पर अब क्या करना चाहिये ॥ २८ ॥ तब श्री ब्रह्माजी बोले कि अब किसी शुभ क्षेत्र में मृत्युंजय की विधि से देवदेव प्रकाश स्वरूप श्री शंकरजी की आराधना करने से कार्य सिद्ध होगा ॥ २९ ॥ विश्व की रचना करनेवाले शंकरजी को चंद्रमा प्रभास क्षेत्र में भजन करे; श्री शंकरजी के प्रसन्न हो जाने पर चन्द्रमा अक्षयता (रोग-राहित्य) को प्राप्त हो जायगा ॥ ३० ॥ इन्द्रादि देवता और पुरातन ऋषिगण इस प्रकार का परमात्मा ब्रह्माजी का वचन सुनकर दक्ष प्रजापति को शान्ति दे, चन्द्रमा को लेकर प्रभास क्षेत्र गये और वहाँ उन्होंने एक गर्त (गड्ढा) खोदा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अनन्तर सरस्वती नदी में सर्व तीर्थों का आवाहन कर मृत्युञ्जय की विधि से पार्थिव श्री शंकरजी का पूजन किया ॥ ३३ ॥ और पवित्र हृदय सर्व ऋषिगण और देवगण

चन्द्रमा को उसी प्रभास क्षेत्र में स्थापन कर अपने-अपने घर प्रसन्न होकर चले गये ॥ ३४ ॥ तब निरन्तर छः महीने चन्द्रमा ने मृत्युञ्जय मन्त्र से वृषभध्वज भगवान् श्री शंकरजी का पूजन करते हुये तपस्या की ॥ ३५ ॥ दशकोटि मन्त्र से जब पूजा समाप्त हुई तब स्वयं प्रभु; लोक को कल्याण देने वाले भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो बोले कि हे चन्द्र ! जो तुम्हारे मन में हो वह वर मांगो। तब चन्द्रमाजी बोले कि हे प्रभो ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुये तो मुझे कोई ऐसा कार्य नहीं है जो असाध्य हो।. तब भी हे प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा करते हुये कल्याण करो और मेरे शरीर का क्षय वारण करो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ऐसा जब चन्द्र ने कहा तब श्रीशंकरजी बोले कि हे चन्द्र ! एक पक्ष में प्रतिदिन तुम्हारी कलायें क्षीण होंगी ॥ ३९ ॥ और पुनः दूसरे पक्ष में निरन्तर तुम्हारी कलायें बढ़ेंगी। जब इस प्रकार श्रीशंकरजी ने वर दिया तो प्रसन्नता पूरित देवगण और ऋषिगण सभी वहाँ आये; और चन्द्रमा को आशीर्वचन करते हुये श्रीशंकरजी से प्रार्थना किया कि हे स्वामिन् ! अब आप यहाँ स्थिर होवें। चन्द्रमा द्वारा संस्कार पाकर श्रीपार्वतीजी के सहित श्रीशंकरजी निराकार रूप से साकार रूप में प्रकट किये गये। और यज्ञ आदि देव कर्म के लिये वह क्षेत्र भी हुआ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ चन्द्रमा के यश के लिये भगवान् श्रीशंकरजी चन्द्रमा के नाम युक्त ही श्रीसोमेश्वर इस नाम से त्रिभुवन में प्रसिद्ध हुये। चन्द्रमाजी धन्य और कृत-कृत्य हुये जिसके नाम से स्वयं श्रीशंकरजी जगन्नाथ पृथ्वी को पवित्र करते हुये स्थित हुये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उस कुण्ड को जहाँ चन्द्रमा ने तपस्या की और भगवान् श्रीशिवजी प्रकट हुये थे, ब्रह्माजी; देवगण और श्रीशंकरजी सबों ने प्रतिष्ठित किया अर्थात् वहाँ स्थित हुये जो अब भी स्पष्ट है ॥ ४६ ॥ वह चन्द्रकुण्ड इस

नाम से सर्व पापों का नाश करने वाला पृथ्वी तल में प्रसिद्ध है उसमें स्नान करने से मनुष्य सर्व पापों से छूट जाता है ॥ ४७ ॥ छः महीने नियम से स्नान करने से जो असाध्य रोग भी हैं वे भी सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ कुष्टी (कुष्ट रोग वाला) शुद्ध हो जाता है और उसके पापों के प्रायश्चित्त भी हो जाते हैं और श्रीप्रभास चेत्र की परिक्रमा कर मनुष्य पृथ्वी परिक्रमा के फल को प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥ कहाँ तक उस चेत्र का महत्त्व कहा जाय, जिस जिस फल की कामना से उस उत्तमतीर्थ को मनुष्य करते हैं; उसी उसी फल को प्राप्त हो जाते हैं इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है ॥ ५० ॥ देवगण और ऋषिगण इस प्रकार का उस तीर्थ का फल देखकर चन्द्रमा के सहित श्रीशङ्करजी को नमस्कार करके प्रसन्नता पूर्वक उस महातीर्थ की प्रशंसा करते हुये परिक्रमा कर अपने अपने स्थान को गये। और चन्द्रमा भी अपने प्राचीन कार्य में लग गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार श्रीसोमेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति हुई, यह कथा हमने आप से कही। जो पुरुष श्रीसोमनाथजी की उत्पत्ति को श्रवण करता है वह सब पापों से छूट जाता है। अब इसके अनन्तर श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति हम वर्णन करते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायां एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

१—श्रीसोमनाथ (सोमेश्वर) जी की यात्रा का वर्णन

(प्रभासचेत्र)

यह ज्योतिर्लिङ्ग अर्थात् श्रीसोमनाथजी जहाँ पर विराजमान हैं; उस देश को शास्त्रों में सौराष्ट्र देश कहकर वर्णन किया है।

आज दिन यह स्थान प्रभास क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। प्रभास क्षेत्र जाने के लिये राजकोट जंकशन तक श्रीद्वारकाजी का ही मार्ग है राजकोट से श्रीद्वारकाजी को एक लाइन जाती है और दूसरी जूनागढ़ आदि होती हुई विरावल वंदरगाह तक जाती है। विरावल वन्दर प्रायः प्रभास क्षेत्र से मिला ही हुआ है। राजकोट से विरावल का टिकट लेना चाहिये। विरावल से ट्राम तथा घोड़े दोनों ही जाते हैं। जैसी सुविधा यात्रियों को समझ पड़े उसी सवारी से जाना चाहिये। मार्ग में कवरिस्तान जो कि असंख्य मुसलमानों के हैं पड़ेंगे, इससे यह वात स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगी कि किसी समय यह क्षेत्र मुसलमानों के आक्रमण का प्रधान लक्ष्य था। गजनी के महमूद ने इस स्थान में कई वार आक्रमण किये और यहाँ से असंख्य धन ले गया। यहाँ के निवासी आर्य भी वीरवर थे जिनकी वीरता का परिचायक उसी कब्रिस्तान को समझा जाय तो कोई अनुचित नहीं है। पर आज दिन प्रभास क्षेत्र में ४० फीसदी मुसलमान हैं। नगर में घुसते समय यह एक बड़े ग्राम के रूप में दिखाई पड़ेगा, पर इसकी वस्ती इसकी प्राचीनता का पूर्ण उदाहरण है। इस क्षेत्र के पूर्वीय द्वार पर एक बड़ी धर्मशाला है जो किसी भाटिया की कृति है। यह बड़ी सुन्दर बनी है; और यात्रियों को ठहरने की पूर्ण सुविधा एवं स्वतंत्रता है। पास ही समुद्र देव अपनी उत्ताल तरङ्गों की गर्जन से चित्त को प्रफुल्लित करते हैं। समुद्र का दृश्य तो यहाँ अतीव मनोहर है; बड़ी बड़ी लहरें उठती हुई तट को इस प्रकार क्षण क्षण में आलिङ्गन करती हैं कि जैसे कोई चिर वियुक्ता प्रणयिनी अपने प्रियतम पति को प्राप्त कर बार बार आलिङ्गन करे। लहरों से उठा शब्द भी वज्रघात सदृश होता ही रहता है। समुद्र तट बालू का बिछा हुआ एक बड़ा मैदान है जिसमें कोई कोई साधुगण भी कभी

कभी पड़े रहते हैं; यह मैदान बड़ा ही मनोहर तथा स्वच्छ भी है। तट पर समुद्र बड़ी अच्छी अच्छी शुक्तिकायें फेंका करता है। समुद्र तट के ठीक ऊपर एक विशाल खंडहर था जो कि प्राचीन श्रीसोमनाथजी का निवास स्थान होते हुये महमूद गजनवी के घोर अत्याचारों का ज्वलन्त उदाहरण था। किन्तु अब यहाँ मन्दिर बन गया है। मन्दिर श्रीसोमनाथजी का आज दिन महाराज बड़ौदा के आधीन है। धर्मशाला में ठहर कर अपने नित्य कृत्य से निवृत्त हो पूजन सामग्री लेकर भगवान् श्रीसोमनाथजी के मन्दिर में जाना चाहिये। यह ज्योतिर्लिङ्ग द्वादश गणनानुसार प्रथम है। मन्दिर बड़ा ही सुरम्य है जाते ही चित्त में शान्ति आ जाती है और चित्त एकाग्र हो जाता है। भीतर जाने पर एक लिङ्ग श्रीशङ्करजी का दृष्टि पथ में आवेगा; उनका दर्शन कर, अधोभाग में जो एक गुफा सी है; वहाँ धीरे धीरे उतरते हुये नीचे एक विशाल श्यामवर्ण लगभग तीन हाथ की ऊँचाई का स्थूल जो दोनों हाथों के भीतर आ सकेगा; ऐसा शिवलिङ्ग तेजोमय दिखाई पड़ेगा। यही श्रीसोमनाथजी हैं। भीतर प्रकाश रहता है, घृत के दीपक सदैव जलते रहते हैं; और ब्राह्मण लोग वेद पाठ, अभिषेक आदि भगवान् श्रीशंकरजी का करते रहते हैं। इनके स्पर्श का अधिकार द्विजाति मात्र को है। विधि पूर्वक पूजन कर यात्रीगण कृतकृत्य हो जाते हैं; और अपने मनोभावों की सिद्धि को प्राप्त करते हैं। दर्शन बड़ा ही रम्य और शान्तिप्रद है। अपनी श्रद्धानुसार यात्रीगण ब्राह्मणों का दान दक्षिणा कर अपने स्थान धर्मशाला में लौट कर भोजनादि कृत्य को समाप्त कर प्रभास नगर की प्राचीनता की तरफ दृष्टि देते हैं, और समुद्र के आनन्द को सायंकाल लेते हैं सायंकाल में भगवान् श्रीशंकरजी की आरार्तिक का दर्शन कर स्थान पर विश्राम करते हैं दूसरे

दिन धर्मशाला से लगभग ६ फर्लाङ्ग पर पाँच नदियाँ जिनके नाम १ हिरण्या, २ व्रजनी, ३ इलंकु, ४ कपिला, ५ सरस्वती है और ये सब समुद्र की खाड़ी से मिलती हैं इनके संगम का स्नान करना चाहिये; क्योंकि इनमें स्नान का बड़ा ही महात्म्य है।

संगम स्नान कर श्रीसोमनाथजी के दर्शन पूजनादि कर अपने स्थान धर्मशाला में लौटकर भोजन विश्राम करना चाहिये। सायं ४ बजने पर प्रत्यक्ष सरस्वतीजी के दर्शन स्नान को जाना चाहिये। चन्द्रमाजी जब शिवाराधन करने में उद्यत हुये थे तब इन्हीं सरस्वतीजी में ही देवता और ऋषिगणों ने सभी तीर्थों का आवाहन कर चन्द्रमा को स्नान कराया था जैसा कि कहा है—"आवाह्य तीर्थवर्याणि सरस्वत्यामतः परम्" यहाँ का दृश्य अत्यन्त शान्तिप्रद एवं मनोहर है। वृक्षों की पंक्तियाँ क्या ही सुशोभित होती हैं उनके मध्य भाग से मन्द मन्द बहती हुई सरस्वतीजी अत्यन्त ही चित्ताकर्षक होती हैं। यह नदी बहुत बड़ी नहीं है। काले मुख के बन्दर भी यहाँ अपनी क्रीड़ा किया करते हैं; अपने प्रकृति के अनुसार क्षण क्षण विचित्र नये नये कौतुक करते हैं जो यात्रियों के देखने योग्य हो जाता है। यह इतिहास प्रसिद्ध वही स्थान है जहाँ दुर्वासा महर्षि के शाप वश समस्त यदुकुल का संहार हुआ था। यहीं पर श्रीबलरामजी की परमधाम यात्रा का स्थान भी है। यहाँ आज दिन भी एक तृण होता है जिसे 'ऐरे' तृण कहते हैं। यह तृण उसी भागवत में लिखी हुई साम्बरूपी स्त्री के गर्भ सूचक गदा को रेत कर समुद्र में फेकने से उत्पन्न हुआ बताया जाता है इसे ही अस्त्र बना बना कर सभी यदुवंशी क्षय को प्राप्त हुये थे। ये लम्बे बड़े तीक्ष्ण तलवार के सदृश होते हैं। प्रभु की महिमा अद्भुत है थोड़े ही समय में समस्त यदुवंशाशोकवाटिका विध्वस्त हो गई। यहाँ की मिट्टी

अब भी कुछ लालवर्ण मिश्रित पाई जाती है। इसे यात्रीगण शिरोधार्य समझते हैं। सरस्वतीजी जाते समय बीच में कई एक तीर्थ पड़ते हैं जिनको चन्द्रकुण्ड और सूर्यकुण्डादि कहते हैं; इनमें भी आचमन स्नानादि अवश्य करना चाहिये। एक वहाँ के ज्ञाता पुरुष को साथ लेने से सब पता हो जाता है। यहाँ जगद्‌गुरुश्री १००८ स्वामी शङ्कराचार्यजी महाराज के मठों का शाखामठ भी है; वहाँ भी जाकर दर्शन सत्संगादि का आनन्द यात्रियों को लेना चाहिये। अनन्तर सायंकाल भगवान् श्रीसोमनाथजी के दर्शन आदि को जाना चाहिये; वहाँ प्रभु का स्मरण ध्यानादि करके अपनी अन्तरात्मा को शान्त स्वरूप में लीन करना चाहिये। रात्रि में विश्राम कर तीसरे दिन यदि इच्छा हो तो समुद्र स्नान आदि करे और अपने नित्य कृत्य से निवृत्त हो भगवान् श्रीसोमनाथजी का दर्शन पूजन कर कुछ जलपान कर लेवे फिर ताँगा द्वारा किराया निश्चित हो जाने पर ऋणमुक्तेश्वरजी को जाना चाहिये। इनका प्रभाव है कि ये ऋण से मुक्त करते हैं। कब्रस्तान को पार कर ऋणमुक्तेश्वर के दर्शन प्राप्त होते हैं। बाईं ओर रत्नाकर समुद्र घोर गर्जन करता हुआ दिखाई देता है; तट ही पर श्रीबाणेश्वर महादेव जी भी विराजमान हैं। इसी जगह से भील ने भगवान् के अरुण चरणकमल को बाण विद्ध किया था भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के कमलदललोचनों को देख मृगलोचन समझ, भील ने प्रभु इच्छा से प्रेरित हो बाण मारा; उद्धवजी को शाश्वतिक ज्ञानोपदेश कर यदुवंश के नाशानन्तर आप परमधाम जाने की इच्छा से भील को बदला देने के व्याज से पैर पर अरुण चरणकमल को चढ़ा कर वृक्ष की जड़ में अपने स्वरूप में स्थित हुये उस भील रूप निमित्त की प्रतीक्षा करते थे। यह स्थान वृक्षों से युक्त बाणेश्वरजी से हजार पाँच सौ कदम की दूरी पर है।

बस यही अपने लीलानायक मनमोहन के परमधाम जाने का स्थान है। जो मनोहर मूर्ति अपनी अनुपम लीलाओं द्वारा भक्तों के प्रेम और प्राणों का आधार थी, वही अब बाह्य दृष्टि से अन्तर्हित हो गई। प्रभु की अन्तिम लीला की समाप्ति भूपृष्ठ पर इसी स्थान में हुई।

इस स्थान के दर्शनमात्र से ही भक्तों के हृदय में करुणा की ज्वार आने लगती है। यहाँ एक छोटा सा पक्का कुण्ड बना है कुण्ड के आस पास कुछ और भी पेड़ हैं, और एक पीपल का भी वृक्ष है; इसी पीपल वृक्ष की जड़ों पर भगवान् श्रीनन्दनन्दन की मनमोहिनी मूर्ति बाणबिद्ध पैर पर पैर चढ़ाये हुये जनों को स्वकर्तव्य फल प्राप्ति का अन्तिम उपदेश दे रही है। यद्यपि प्रभु काल के भी काल हैं तथापि उनकी मानव लीलायें हर प्रकार से अपने देश वासी सज्जनों के अज्ञान तिमिर की नाशक हैं। बाण लगते ही भील ज्योंही पास आया प्रभु, को मन्द मन्द मुसकुरान करते देख वह अतीव करुणा पूरित चित्त हो प्रभु के चरणों में पड़ अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा। भगवान् ने कहा कि हमने भी तो तुमको श्रीरामरूप में रह कर बाण बिद्ध किया था; यह उसी का बदला हमने तुमको दिया है। तुम कुछ चिन्ता न करो यह सब हमारी इच्छा का विलसित है। यह व्याध (भील) किष्किन्धाधिपति महाबली बाली बानर या बालि पुत्र अङ्गद पौराणिक ग्रन्थ में बताया गया है। भगवान् के उपदेश से उसका अज्ञान दूर हो गया, और प्राचीन स्मृति आ गई; वह भगवान् का अन्तिम दर्शन कर कल्याण भागी हुआ, और भगवान् ने भी अपने भूलीलानायक स्वरूप का उसी क्षण में तिरोभाव कर दिया। यह भूमि कितनी स्मरणीय; और करुणोद्भावक है यह भगद्भक्तों के हृदय से पूछना चाहिये। वहाँ से लौट कर चलने

की तैयारी करना चाहिये, प्रायः यही स्थान प्रभास क्षेत्र के मुख्य मुख्य आज दिन दृष्टि गोचर होते हैं। बस प्रभास क्षेत्र की यात्रा समाप्त हुई।

२—अथ श्रीमल्लिकार्जुनज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव

भाषार्थः—श्रीमल्लिकार्जुनज्योतिर्लिङ्ग के प्रादुर्भाव विषय में शिवपुराण में ऐसी कथा आई है। कि श्रीशिवजी के दोनों पुत्र कार्तिकेयजी और गणेशजी के मध्य विवाह विषयक स्पर्धा चलने लगी। श्रीगणेशजी कहते थे कि हमारा विवाह प्रथम होना चाहिये और श्रीकार्तिकेयजी कहते थे, नहीं हमारा विवाह प्रथम होना चाहिये। इस प्रकार झगड़ा होने से श्रीशिवजी और पार्वतीजी बड़े असमञ्जस में पड़ गईं। अन्त में सोच कर यह उपाय निकाला कि जो पहिले पृथ्वीप्रदक्षिणा कर आवेगा; उसी का विवाह पहिले होगा। जब यह निश्चय हुआ तब श्रीस्कंदजी अपने मयूर पर बैठकर बड़ी तेजी से दौड़े; और श्रीगणेशजी का वाहन मूषक बहुत तेज नहीं दौड़ सकता था। श्रीगणेशजी ने समझ लिया कि हमारा पृथ्वीप्रदक्षिणा श्रीकार्तिकेय से पहिले करना असम्भव है। श्रीगणेशजी बुद्धिमानों में अग्रगण्य तो हैं ही उन्होंने पृथ्वी प्रदक्षिणा को छोड़, श्रीशिवजी और श्रीपार्वतीजी को दिव्यासन पर बैठा पूजा किया और सात प्रदक्षिणायें लगाईं। प्रणाम कर हाथ जोड़ बोले कि माता पिता की प्रदक्षिणा करना पृथ्वी की प्रदक्षिणा के समान यदि शास्त्र, वेदों में हो तो हमारा विवाह हो जाना चाहिये। श्रीभगवतीजी और श्रीशिवजी इस प्रकार श्रीगणेशजी की चतुराई देख चकित हो गये; और शास्त्र मर्यादा को रखते हुये विवश हो श्रीगणेशजी का विवाह कर

दिया। विवाह हो जाने पर श्रीगणेशजी के पुत्र भी हो गये। इतने में श्रीस्कन्दजी लौट रहे थे कि नारदजी ने उनसे मिल कर कहा कि देखो तुम्हारे माता पिता कैसा दुष्ट भाव तुम्हारे विषय में रखते हैं कि तुमको तो पृथिवीप्रदक्षिण करने भेज दिया; और बीच में गणेशजी का विवाह कर दिया और उनके पुत्र भी पैदा हो गए। यह सुन स्कन्दजी बहुत क्रुद्ध हुए। माता पिता का यह अन्याय कार्य समझ बहुत समझाने पर भी न मान, ऐसे अन्यायी माता पिता के साथ रहना ठीक न समझ अलग हो श्रीशैलपर्वत पर जा विराजे।

यह कथा पूर्व में कही गई है। इस प्रकार श्रीस्कन्दजी से श्रीशिवजी और श्रीपार्वतीजी से वियोग हो गया। पुत्र पर माता का स्नेह अधिक होता है इसलिए भगवती श्रीपार्वतीजी कुमार के वियोग से दुःखित हुईं ॥५५॥ श्रीशंकरजी बोले कि हे प्रिये! तुम्हारा पुत्र आजायगा तुम इस उत्कट दुःख का परित्याग करो ॥ ५६ ॥ जब श्रीपार्वतीजी ने यह बात सत्य नहीं समझा, तब श्रीशंकरजी ने देवता; ऋषि, गन्धर्व और प्रसन्नचित्त अप्सराओं को भेजा ॥ ५७ ॥ वे सब श्रीकार्तिकेय जी के लौटाने के लिए गए, और बहुत प्रकार से श्रीशिवजी और पार्वतीजी के वचनों को सुनाया और लौटने के लिए आग्रह किया; पर जब श्रीस्कन्दजी न लौटे तब वे लोग अपने अपने स्थानों को लौट गये ॥ ५८ ॥ तब श्रीभगवतीजी और श्रीशिवजी पुत्र के वियोग से परमदुःख को प्राप्त हुए, और शीघ्र ही स्वपुत्र को लौटाने गए ॥ ५९ ॥ जब श्रीशिवजी और श्रीपार्वतीजी श्रीशैल पहुँचे; तब नाराज होकर उससे भी और तीनयोजन दूर क्रौंच पर्वत पर स्कन्दजी जा बैठे ॥ ६० ॥ तब श्रीशंकरजी और श्रीपार्वतीजी उसी श्रीशैलपर्वत पर ज्योतिः स्वरूप से स्थित हो

गए। उसी दिन से लेकर श्रीमल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग श्रीशिवजी का त्रिभुवन में विख्यात हुआ॥ ६१॥ अर्थात् देव देव सनातन भगवान् श्रीशिवजी ज्योतिरूप में विराजमान हो गए। श्रीमल्लिका नाम से श्रीभगवतीजी और श्रीअर्जुन नाम से श्रीशिवजी स्थित हुए। दोनों मिल कर मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग के रूप से प्रसिद्ध हो गए॥ ६२॥ इस श्रीमल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, और सब दुःख दूर हो जाते हैं मनुष्य अत्यन्त सुख का भागी बनता है॥ ६२॥ माता के गर्भ से उत्पन्न होने का फल जो होना चाहिए वह प्राप्त कर धन, धान्य समुन्नति, लोकप्रतिष्ठा, और आरोग्यता को प्राप्त होता है॥ ६४॥ उसके सभी मनोऽभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं; इसमें किञ्चित्संदेह नहीं है। श्री सूतजी ऋषियों से बोले कि लोक के कल्याणार्थ इस द्वितीय ज्योतिलिङ्ग का कथन आप लोगों से किया॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ज्ञानसंहितायां पञ्चचत्त्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

२—श्रीमल्लिकार्जुनजी की यात्रा का वर्णन

श्रीमल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग श्रीशैलपर्वत पर विराजमान है। श्रीशैल का मार्ग कष्टप्रद है, यद्यपि पहिले की अपेक्षा अब सौकर्य है तथापि यह यात्रा शिवरात्रि, चैत्र, एवं आश्विन मास के नवरात्र के समय में ही करने योग्य है; अन्य समयों पर यात्री को महान कष्ट का सामना करते हुए जीवन में भी सन्देह हो सकता है। क्योंकि अन्य समयों पर किसी प्रकार का प्रबंध नहीं रहता है मार्ग में जल का भी सौकर्य सर्वत्र नहीं है। शिवरात्रि आदि के समय पर सरकारी पुलिस तथा खाद्य सामग्री की सुविधा यथा कथ-

क्षित् रहती है। इस मार्ग में जंगल अधिक पड़ता है और इस पहाड़ी जंगल में भिल्लों का साम्राज्य है। यात्रा समय में इन लोगों के लिये टैक्स देना पड़ता है। और गवर्नमेण्ट की ओर से इन्हीं भिल्लों की नियुक्ति रक्षा में रहती है। ये लोग आज दिन भी बड़े तीव्र बाण और धनुष लिये रहते हैं। ये रूप में काले एक लंगोटी लगाये, बाल बढ़ाये हुये दिखाई पड़ते हैं। ये अपने को भिल्ल नहीं बताते किन्तु "चंचुवाय" कहते हैं। भाषा हिन्दी तो नहीं समझते पर संकेत से काम निकल जाता है। ये लोग तैलगू भाषा और भाषाओं से अधिक समझते हैं। इन लोगों का टैक्स जो दिया जाता है। उसी से शान्ति रहती है। पहिले ये लोग यात्रियों के प्राण घातक हो जाते थे; लूट मार चोरी आदि सभी कार्य करते थे; पर अब ऐसा नहीं देखने में आता है। ये लोग इस जंगल में व्याप्त हैं। श्रीशैल पर्वत पर जाने के मार्ग प्रत्येक दिशा के यात्रियों के भिन्न भिन्न हैं। संयुक्त प्रान्तादि उत्तरीय यात्रियों का मार्ग निजाम हैदराबाद से करनूल निजाम स्टेट रेलवे (एन० जी० एस० आर० से जाना पड़ता है। हैदराबाद से करनूल का किराया २।≡ पहिले था 'करनूल' यह मद्रासप्रान्त का जिला है। ७॥ बजे गाड़ी प्रभात में करनूल के लिये जाती है और १२॥ बजे पहुँचती है। गाड़ी से उतर कर एक तांगा द्वारा नगर सेठ की धर्मशाला (क्षेत्रम् को चले जाना चाहिये। यद्यपि यहाँ और भी धर्मशालायें तथा मन्दिर हैं पर इस धर्मशाला में कोठरी आदि का ठीक प्रबन्ध है रसोंई बनाने के लिए भी पीछे जगह बनाई गई है, नल भी है। कूप का जल अच्छा नहीं है। धर्मशाला में शिव-मन्दिर है। यहाँ यह अच्छी धर्मशाला है। धर्मशाला के पास ही एक छोटी सी नदी बहती है, पर जल अच्छा नहीं है, लगभग दो फर्लाङ्ग पर श्रीतुंगभद्रा नदी अमृतकल्प जल परिपूर्ण बहती है।

इसकी गहराई अधिक न होने पर भी पाषाण व्याप्त होने से दुर-वगाह है। स्नानादि से निवृत्त हो भोजन विश्राम करना चाहिये। करनूल से कुछ लोग "आलमपुर" देव दर्शन को जाते हैं। तांगे, बण्डी आदि सभी जाते हैं, आलमपुर रेलवे स्टेशन भी है। वहाँ तुंगभद्रा तट पर श्रीशङ्करजी तथा श्रीभगवतीजी के उस प्रान्त के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। करनूल के उस पार तुंगभद्रा पार करने पर एक शिवदेवालय है; एक श्रीराममन्दिर जो रामभट्टदेवळ कहा जाता है; यह भी तुंगभद्रा के तट पर नया बना है। इन प्रान्तों में आटा कम मिलता है। सायंकाल अपनी आवश्यक सामग्री ठीक कर प्रभात में सात बजे मोटर स्टैण्ड पर पहुँच जाना चाहिये। शिवरात्रि के कुछ पहिले जाने में अच्छा रहता है। करनूल से मोटर द्वारा "आत्मकूर" जाना होता है। आत्मकूर का किराया सदैव १) लगता है; पर मेले ठेले में मनमाना हो जाता है; यहाँ तक कि ३) रु० तक प्रति यात्री से लेते हैं। दूरी लगभग ४२ मील है। आत्मकूर में दो छोटी और एक बड़ी धर्मशाला तथा देवल है। शिवरात्रि के निकट ही जाने में इन धर्मशालाओं में तिल भर जगह नहीं रहती, इस लिए यात्रियों को कष्ट होता है। पश्चिमीय बम्बई आदि के प्रान्त से जो लोग श्रीशैल यात्रा करते हैं, उन्हें कुछ दूर जी आई० पी० और गुंटकल रेलवे से "द्रोणाचलम्" होते 'नन्दियाल' स्टेशन से 'आत्मकूर, को आना पड़ता है। दक्षिण प्रान्त के लोगों का भी यही मार्ग है। अर्थात् गुंटकल से द्रोणाचल पुनः नन्दियाल से आत्मकूर जाते हैं। पूर्व की ओर से आने वाले बैजवाड़ा होकर नन्दियाल या अन्य मार्गों से जाते हैं। नन्दियाल से पाँच कोश पर "महानन्दी" या महानन्द में शिवदर्शन हैं और यहाँ भी ॐकारेश्वरजी हैं। बहुतेरे लोग दर्शनों को आते जाते समय जाते हैं। आत्मकूर में भी खाद्य सामग्री मिल जाती है।

पोष्टादि भी हैं। आत्मकोर से बण्डी (बैलगाड़ी) "पिचेरु" तालाब तक के लिए मिलती है। पिचेरुतालाब को "पद्दपिचेरु" भी कहते हैं। यह जंगल के बीच एक तालाब है और इसी का जल यात्रियों को पीना पड़ता है। बीच का जल अच्छा दीखता है, पर किनारे किनारे यात्री दूषित कर डालते हैं; जल पर्याप्त है। आत्म-कोर से बण्डी के रास्ते यह स्थान २७ मील पड़ता है। पूरी बण्डी जिसमें ५ या ६ आदमी बैठ जाते हैं; ५) पाँच रुपये में जाती है। १४ घण्टे में ये लोग इस सत्ताइस मील के मार्ग को पार कर पाते हैं; मार्ग की विषमता के कारण यात्रियों को बण्डी से अधिक कष्ट होता है। जल भी मार्ग में कहीं मिल सकता है, पर कठिनता से मिलता है। पैदल का मार्ग 'नागरोटी' होकर आत्मकोर से पिचेरु १८ मील पड़ता है। जानकार यात्री उस प्रान्त के पैदल इस मार्ग से भी जाते हैं। पिचेरु तालाब पर बनियों की आटा दालादि खाद्य सामग्री की दूकानें, और एकाध मरहठी होटल; तथा यात्रियों के ठहने की जगह घासफूस से छाकर बनाई जाती है। भूमि पर गोखुर के कांटे बहुत रहते हैं। पर यात्री किसी तरह निर्वाह करते हैं। आत्मकोर से चलते ही -) आना म्युनिस्पिल टैक्स यात्रियों से लेते हैं। मध्य जङ्गल के रोलापेट्टा मुकाम पर -) टैक्स भीलों का प्रत्येक यात्री और १) मोटर या गाड़ी वाला देता है। यहाँ जङ्गल का रक्षक एक सरकारी आदमी रहता है। आत्मकोर से ही जङ्गल तथा भीलों का साम्राज्य आरम्भ होता है। पिचेरु तालाब पर तो बहुतेरे धनुष और तीव्र बाण लिये घूमा करते हैं। इनका निशाना अच्छा रहता है। बाणों से बड़े जानवरों के मारने में डर रहता है पर छोटे जानवर मर सकते हैं। मनुष्य भी मर सकता है। हम ने अपनी यात्रा में ठीक रूप से इनके धनुष बाणों को देखा है। पुच्छ भाग में पहिले के जैसे काक पक्ष भी लगे रहते

हैं। शिवरात्रि के दो तीन दिन पहले 'पिचेरु' तक मोटर भी जाता है। पर किराये की कोई व्यवस्था नहीं है। पाँच, चार, तीन रुपये अथवा जहाँ तक बन सके लूट रहती है। यहाँ दो तीन बंगले जंगली महकमों के आये गये कर्मचारियों के ठहरने के लिए बने हैं। सदैव यहाँ बनियों की दूकाने नहीं रहती है। आत्मकोर से आती हैं। इस लिए शिवरात्रि आदि समयों से अतिरिक्त समय पर आने वाले यात्रियों को अपने खान-पान तथा शारीरक रक्षा का उपाय ठीक करके जाना चाहिये। एक भील को अवश्य रखना चाहिये।

पिचेरु तालाव से 'पाद चार' मार्ग ९ मील ६ फर्लाङ्ग है, पर चलने में अधिक परिश्रम प्रद है। मार्ग के दोनों ओर जंगल है; मार्ग में केवल दो जगह जल मिलता है; एक बावड़ी पड़ती है, दूसरा जलाशय स्थान भीमकोला कहलाता है, यहाँ जल एक पत्थर की चट्टान के नीचे से थोड़ा थोड़ा निकल कर एक छोटा सा कुण्ड भरता है। यात्रा समय में यह जल दूषित हो जाता है यह बड़ा कष्टप्रद विषय है, मार्ग में इसके अतिरिक्त कोई जलाशय नहीं है। मार्ग जाते समय भीमकोला तक साधारण उतार का है; भीमकोला से एक मील की चढ़ाई है। पिचेरु स्थान से भीमकोला मध्य में है, आगे उतना ही चलने पर श्रीशैलेश्वरजी का दर्शन होता है। पिचेरु से तीन चार बजे चल देना चाहिये; कुछ जलपान पास रखना चाहिये; भीमकोला में स्नानादि कर जल पीकर तब चढ़ाई पार करना चाहिये। जल भी कुछ साथ रखना उचित है। पिचेरु तालाव पर कुली, डोली वाले बहुत से मिलते हैं, इन्हें सायंकाल ही पक्का कर ठीक कर लेना चाहिये जिससे ये समय पर आ जाँय। टट्टू भी मिलते हैं। पिचेरु से कुछ ही चलने पर जहाँ मील गड़ा है, उसी जगह भीलों का ≈) आना कर पुनः देना पड़ता है।

भीमकोला पहाड़ों के बीच एक दर्रा में हैं। यहाँ से जब एक मील की चढ़ाई पार करते हैं तब एक पत्थर का पुराना फाटक मिलता है फाटक से आगे का मार्ग सम तथा कुछ उतार का है। सीढ़ियाँ भी चढ़ाई के स्थान में बनी हैं। भीमकोला से जब यात्री चलते हैं तब जय जय श्रीमल्लिकार्जुन की भनकार से उस नीरव वन को मुखरित कर देते हैं। भीमकोळा पर एक छोटा सा शिवमन्दिर है, यहाँ का पहाड़ी दृश्य अच्छा है।

यात्रा समय को छोड़ इन स्थानों में कोई नहीं रहता। चढ़ाई पार करने पर फाटक के पास से मार्ग सम कुछ ढाल पर मन्दिर के पास तक चला गया है। जब मन्दिर दो चार फर्लाङ्ग रह जाता है; तब फिर -) एक आना टैक्स भीलों को देना पड़ता है। ये लोग मार्ग रोके खड़े रहते हैं। ये लोग साधुओं से भी टैक्स ले लेते हैं। हाँ; किसी खाकी बाबा पर दया कर जाँय। अन्यथा किसी को नहीं छोड़ते हैं। इस तरह तीन चार जगह पर टैक्स भरने पड़ते हैं। मन्दिर के पास जब पहुँचते हैं; तब यह भूमि सम आती है। पहाड़ की चोटी पर यह एक अच्छा सम मैदान है। पर वृक्षों की छाया न होने से रम्यता उतनी नहीं है। मन्दिर पुराने ढङ्ग का प्राचीन बना है। दक्षिण के मन्दिरों की सी ही बनावट है। बाहर एक बड़ी ऊँची चहारदीवारी घूमी है। यह चहारदीवारी पत्थर की है और उस पर हाथी घोड़े के चित्र बने हैं। चारों ओर चार फाटक ऊँचे शिखरदार दक्षिणी बनावट का अनुसरण करते हैं; इन फाटक के शिखरों के उद्धार का कार्य आरंभ हुआ है। मन्दिर में दो परिखायें हैं; भीतर भी स्थान पर्याप्त है और बाहरी परिखा बड़े घेरे में घूमी है। मध्य में भगवान् श्रीमल्लिका-र्जुनजी का मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है। इसके पास ही एक पाकर और पीपल का सम्मिलित वृक्ष है जिसके चारों

ओर चबूतरा बना है। इसी वृक्ष के नीचे दीन यात्री तथा साधु वेष वाले बहुतेरे अपना निर्वाह करते हैं। मन्दिर के चारों ओर जलपूर्ण बावड़ी बनी हैं उसमें उत्तर पश्चिम की ओर कुछ बड़ी बावड़ी है; उसका जल और सभों से अच्छा है। इन बावड़ियों में जल कम होने पर बाहर मन्दिर के पास एक बड़ी पक्की बावड़ी है, उससे नल द्वारा पहुँचाया जाता है। उसमें मशीन पानी की और बिजली की लगी हुई है। इन बावड़ियों पर मेले के समय स्नान नहीं करने देते। आस पास कुत्सित जलपूर्ण दो एक छोटे मोटे तालाब हैं; उनमें भी बहुतेरे यात्री स्नान कर लेते हैं। मन्दिर के चारों ओर छोटे छोटे लगभग बीस पच्चीस शिव मन्दिर हैं। और मल्लिकार्जुन के पश्चिम (पीछे) श्रीअम्बाजी का मन्दिर है। यात्रा समय ये सभी छोटे मन्दिर किराये पर यात्रियों के ठहरने को दिये जाते हैं, और भी छोटी छोटी खोलियाँ (कोठरियाँ) जिनमें दरवाजे नहीं हैं, यात्रियों से किराया लेकर देने के लिये बनाई गई हैं और प्रबन्ध भी हो रहा है। इन दो चार हाथ लम्बी चौड़ी खोलियों में यात्रियों को कष्ट ही से निर्वाह करना पड़ता है। किराया भी कम नहीं है। मन्दिर के आस पास की जगह ५) ६) या ७) रुपये तक में दी जाती है। जिसमें बहुत कम जगह है वह तीन ३) रुपये की है। मन्दिर के बाहरी घेरे के भीतर घास तथा टाटी से बने हुए झोपड़े रहते हैं जो घास धूप को ठीक रूप से रोक नहीं सकती है। एक तरफ ये खुले रहते हैं अथवा सभी तरफ खुले ही रहते हैं। इनका भी किराया प्रत्येक का २) रुपया रहता है। टिकट लगे रहते हैं। मन्दिर चहारदीवारी के बाहर भी इसी प्रकार का यात्री ठहरने का प्रबन्ध किया जाता है। कुछ प्रबन्धक लोगों के कैम्प रहते हैं और कुछ भीलों के झोपड़े बने दिखाई देते हैं। यहाँ की विचित्र बात यह है कि पर्वत की चोटी

पर भी जल वहुत निकट ही केवल दो चार हाथ की गहराई में कूपादिकों में निकलता है। मन्दिर के भीतर की भूमि निम्नोन्नत है; जहाँ तहाँ पत्थर निकले हैं जिनमें कुछ अन्धकार में या असावधानी से यात्री ठोकर खाकर गिर भी पड़ते हैं।

मन्दिर का प्रधान द्वार पूर्व की ओर है। द्वार के पास ही एक वहुस्तम्भयुक्त सभा मण्डप सा है जिसके मध्य में वड़े विशालकाय पाषाण मूर्ति श्रीनन्दीश्वरजी विराजमान हैं। मन्दिर द्वार के भीतर सभामण्डप में एक दूसरे छोटे से नन्दीश्वरजी हैं; इस सभामण्डप में भी वहुत से खम्भे पत्थर के हैं। अनन्तर मन्दिर का द्वार है; द्वार वहुत बड़ा नहीं है, और न मन्दिर के भीतर ही अधिक स्थान है। मध्य मन्दिर के भीतर श्रीमल्लिकार्जुन देव की लगभग ८ अंगुल ऊँची छोटी सी मूर्ति पाषण के अनगढ़ अर्घा में पधरी हुई है। जिसके दर्शन से अधिक प्राचीनता नहीं ज्ञात होती, वरावर चिकनी भी उतनी नहीं है। यात्रीगण भगवान् श्रीशैलेश्वरजी के दर्शन प्राप्त कर अपना परिश्रम सफल मानते हैं। पर श्रीमल्लिकार्जुनजी का दर्शन सर्व सुलभ सर्वदा नहीं है वहाँ दर्शन में एक बड़ा टैक्स (कर) देना पड़ता है। सन् १९४१ ईस्वी में वह टैक्स प्रत्येक यात्री को १॥=) एक रुपया दसआना केवल दो वार के दर्शनों के लिये देना पड़ता है। इस टैक्स में १।) श्रीमल्लिकार्जुन दर्शन, ।) अम्बादर्शन और =) वार (लड़ाई) फंड सम्मिलित था। टैक्स शिवरात्री के एक सप्ताह प्रथम ही और अमावास्या तक रहता है। शिवरात्रि के दिन बड़े प्रयत्न से कर्मचारियों के कहने से उनकी इच्छा से सम्भवतः कोई दीन धनहीन साधु यात्री जा भी सके; अन्यथा विना टैक्स दिये दर्शन होना दुर्लभ है। सम्भवतः इस आय का ठेका सा लोग लेते हैं। मन्दिर के लिये कुछ भाग देकर शेष प्रवन्धक कोष में जाता है। मन्दिर

की प्रवन्धक एक कमेटी है जिसका प्रेसीडेण्ट करनूल में रहता है। पर यह नाम मात्र ही है प्रवन्ध सरकारी रहता है। करनूल जो मद्रास का जिला है यहीं से पुलिस आदि की नियुक्ति मेला के समय में होती है। सरकारी कर्मचारी डिप्पुटी कलक्टर आदि भी जाते हैं। मेले में लगभग १० हजार से भी अधिक मनुष्य इकट्ठे होते हैं। जिसमें अधिक संख्या 'लिङ्गायत' नर-नारियों की रहती है। लिङ्गायत लोग श्रीमल्लिकार्जुनजी में बड़ी श्रद्धा रखते हैं। श्रीशैल को 'भूकैलाश' अथवा पुरी कहते हैं। ये लोग तैलङ्गी भाषा बोलते हैं। एक क्षेत्र भी दीन, तथा साधुओं के लिये खुलता है। यह दर्शन मेला प्रायः लिङ्गायतों का ही है। ये लोग श्रीमल्लिकार्जुनजी को "मलैया" कहते हैं। और इसी नाम से स्त्रियाँ नाना भांति के गायन करती हैं।

मन्दिर के पूर्वीय द्वार से सीधा मार्ग "कृष्णापुलिन" (पाताल गंगातट) तक चला गया है। द्वार पर दोनों ओर दूकाने रहती हैं जिनका किराया वड़ा कड़ा रहता है। सामान्य वस्तुयें खाने पीने की तथा पूजोपयोगी वस्तुयें मिलती हैं।

कृष्णा नदी का तट माप से तो १ मील ६ फर्लाङ्ग मन्दिर से पड़ता है; परन्तु जानेवाले यात्री ही उस परिश्रम को जानते हैं। मार्ग लगभग आधा कुछ सामान्य उतार का है। शेष मार्ग खड़े उतार की सीढ़ियों का है, ये सीढ़ियाँ एक हजार के लगभग हैं उसमें ८५२ सीढ़ियाँ उतरने में अधिक कष्टप्रद हैं। बीच बीच में चार बारादरी विश्रामार्थ बहुत प्राचीन बनी है; जिनमें थके हुये यात्री विश्राम ले सकते हैं। कृष्णा तट यात्री प्रतिदिन नहीं जाते केवल शिवरात्रि एकादशी या अमावास्या को बड़ा साहस बाँध कर जाते हैं। बहुतेरे डोलियों में जाते हैं। शिवरात्रि के दो एक दिन पहिले से ही मंगन लोग मन्दिर से लेकर कृष्णा तट तक बैठ जाते

हैं। यात्रीगण इन्हें पाई पैसा देते हैं। मन्दिर पहाड़ की चोटी पर है और कृष्णानदी पर्वत पाददेश में हैं, इसीलिये वहाँ के लोग इन्हें 'पाताल गंगा' कहते हैं। कृष्णा स्नान कर जब यात्री लौटते हैं, तब बड़ी कड़ी चढ़ाई का सामना करना पड़ता है जिससे यात्रियों की श्रद्धा शिथिल हो जाती है। और वे पुनः जाने की इच्छा नहीं करते। शिवरात्रि की रात्रि बीती कि मंगन लोग सब भाग जाते हैं। मन्दिर से जब चलते हैं, तब दो एक बहुत छोटी छोटी मड़फी और एक छोटा सा मन्दिर पड़ता है। उसके द्वार पर एक खम्भे में जो दो हाथ ऊँचा है, एक नन्दी मूर्ति "मलैया" बाबा की ओर मुख किये बैठी है, बस इसी स्थान से चढ़ाई उतराई आरम्भ होती है। और यहीं से भगवती कृष्णा का हरित वर्ण जल पूर्णस्वरूप से दृष्टि गोचर होता है। जब नीचे उतर जाते हैं तो जहाँ सम भूमि मिलती है, वहीं दो नाले मिल कर श्रीकृष्णा में जा मिलते हैं उन में एक में जल सदैव बहता रहता है। इसलिये इस संगम घाट को यात्री लोग त्रिवेणी कहते हैं। कृष्णा में कोई घाट नहीं बना है, स्वाभाविक वनस्थली का पार्वत्य पुलिन ही घाट है। कृष्णा की गति यहाँ पर कुटिल है पर्वतों के दर्रे में अगाध जल हरित वर्ण अमृतमय भरा हुआ है जिसे देख बलात्कार से अतृप्त आँखें अनिमेष भावापन्न हो जाती हैं। पर्वत मानो हरितवर्ण धौतवस्त्र धारण किया हो। यहाँ जल इतना गहरा भरा है कि कुछ लोगों का कहना है कि उसकी थाह नहीं मिलती है। जो हो पर यह कहना पड़ेगा कि यहाँ गहराई अधिक है, पर पाट बहुत बड़ा नहीं है। शुष्क पर्वत प्रदेशों को क्षालन करती हुई कृष्णा मन्द गति से नववधू की भांति पूर्व की ओर गमन करती है। नदीतट की तथा पर्वत माला की शोभा लेखनी के बाहर है। पर कष्ट का विषय यह है कि इन पर्वतों तथा

कृष्णा तट में छायादार कोई भी वृक्ष नहीं हैं। तट बड़े बड़े हस्ति-कायोपम पाषणों से पूर्ण है। स्नान योग्य स्थान भी कहीं कहीं मिलता है।

पर्वसमय को छोड़ यहाँ मानव दर्शन दुर्लभ हैं। बड़े बड़े शेरों के पंजों के चिन्ह भूमि पर दृष्टिगोचर होते हैं। यह वन शेर, व्याघ्र, ऋक्षों और बानरों से पूर्ण है। सांभर हरिन दिन में भी बोला करते हैं। रात में ८ बजे के अनन्तर वन्य जन्तु निकल पड़ते हैं, और अव्याहत गति से इस अटवी में अटन करते हैं। इस लिए रात में यहाँ रहना तथा जाना योग्य नहीं है। यात्रा समय में जन्तु मानव कोलाहल से कुछ दूर हट जाते हैं। पर जन कोलाहल केवल एक ही दो दिन का है, अन्यथा नीरवता, का स्वच्छन्दावास सदैव बना रहता है। पूर्व की ओर कृष्णा तट को गमन करने पर लगभग आधे मील पर दुर्गम मार्ग को तँय करने पर एक बड़ी विचित्र कन्दरा मिलती है, जिसमें देवी भैरवादि देव बैठे है। सामने तो कुछ ही, पर पूर्व पश्चिम यह कंदरा पर्वत के भीतर ही भीतर सुना जाता है दश पाँच मील तक गई है और भीतर जाना बहुत कठिन है। शिवरात्री के समय दो तीन रात्रि के लिये यहाँ भी अर्थकामुक दो एक साधुवेषावलम्वी आ जाते हैं। पर ये सदैव अग्नि जलाये रहते हैं और बड़े जोर से ऐसा शब्द किया करते हैं कि जिसमें जानवर न आवें। शिवरात्रि होते ही ये लोग यहाँ से चल पड़ते हैं। इस स्थान से कुछ दूर पर एक बड़े पत्थर के आधार से अपना दिन कृष्णा के तट में व्यतीत होता था। वहाँ शान्ति का ऐकान्तिक सुख अनुभवगम्य है। वहाँ से दो मील आगे "लिङ्गारघाट" है जहाँ लिङ्गायतमतावलम्बी शिवलिङ्ग ढूँढने जाते हैं। वही आते जाते गुफा में बैठे हुए साधुओं को कुछ देते हैं। पर चार बजे के पहिले ही ये लोग अपने स्थानों को लौट जाते

हैं। मेले के दो दिन तक भिल्ल लोग कृष्णा में पैसा ढूँढते हैं। कम से कम फाल्गुण कृष्णा एकादशी से एकाध दिन पूर्व यहाँ पहुँच जाना चाहिये। विश्राम कर प्रथम दिन—एकादशी को कृष्णास्नान कर जल लाकर भगवान् श्रीमल्लिकार्जुनजी का यथाविधिपूजनादि करना चाहिये। पर मन्दिर के भीतर कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि वहाँ ठहरने नहीं देते बाहर कर सकते हैं। इसके अनन्तर अन्य दर्शनों को कर भोजन विश्राम करना चाहिये। दूसरे दिन प्रभात में ही बहुतेरे यात्री "शिखरेश्वर तथा श्रीहाटकेश्वर" जी के दर्शनों को जाते हैं। ये मन्दिर से ६ मील दूर हैं, मार्ग भी कठिन है। श्रीशिखरेश्वरजी से श्रीमल्लिकार्जुनजी का मन्दिर कलश लोग देखते हैं क्योंकि कहा है कि "श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते" अर्थात् श्रीशैल का शिखर देखने से पुनर्जन्म नहीं होता है।

शीघ्रता से लौट कर अपने स्थान पर विश्राम करना चाहिये।

तीसरे दिन—शिवरात्री के दिन पुनः कृष्णावगाहन कर जल लाकर भगवान् की यथाविधि यथाशक्ति पूजा अर्चाकर उपोषण करना चाहिये। इसी दिन रात्रि में शिव पार्वती विवाहोत्सव भी होता है। बारात निकलती है भांति भांति की आतिशबाजी होती है। यह सब आनन्द लेते रात्रि जागरण कर प्रभात में स्नानादि से निवृत्त हो, शिवपूजनानन्तर पारण कर विश्राम लेना चाहिये। इस दिन यथेष्ट दर्शन आनन्द लेना चाहिये। पश्चिम ओर श्रीअम्बाजी का मन्दिर है, अम्बाजी का दर्शन बड़ा ही मनोहर है। मन्दिर से कुछ दूर दो मील पर कुछ पुराने मठ आदि बने हैं। इस पर्वत पर और भी दर्शन हैं। जैसे बिल्ववन यह शिखरेश्वरजी से भी आगे ५ या ६ मील पर है बिना जानकार व्यक्ति के इन स्थानों पर जाना योग्य नहीं है। पर्वतमालावेष्टित गहनबन में

"एकमा" देवीजी हैं जहाँ दिन में ही शेर व्याघ्रादि घूमते रहते हैं। किसी बनेचर के बिना इन सब का दर्शन दुर्लभ है। इस तरह दर्शनादि कर अमावस्या का स्नान कृष्णा में कर श्रीशैलेश्वर मल्लिकार्जुनजी की जैकार कर चल देना चाहिये। मार्ग में दोतीन स्थानों पर खम्भों पर नन्दीमूर्ति प्रतिष्ठित है। श्रीमल्लिकार्जुनजी का मन्दिर राजा चन्द्रगुप्त का बनवाया हुआ सुना जाता है, परन्तु यह सम्राट् मौर्यचन्द्रगुप्त नहीं हो सकता, कोई दूसरा ही चन्द्रगुप्त होगा ऐसा ध्यान में आता है। मन्दिर की मरम्मत सजावट पर ध्यान कमेटी कर्मचारियों का उतना नहीं देख पड़ता जितना टैक्स लेने में देख पड़ता है। कुछ जीर्णोद्धार आरम्भ अवश्य है। सुना जाता है कि यहाँ दो पुजारी बारों मास रहते हैं; पर कम सम्भव ज्ञात हुआ; केवल मेले के समय अधिक सम्भव है। कृष्णा के मार्ग में फूलों के कुछ वृक्ष ऐसे मिलते हैं जिनका सौरभ अतीव मनोहर दूर फैलने वाला है ऐसे वृक्ष प्रायः अन्य स्थान में नहीं देखने में आते हैं। स्थान तपो भूमि है। भिल्लों को छोड़ अन्य मनुष्य नहीं मिल सकते। इनमें धनी भी हैं "भलैया भील" के पास हजारों गाय भैंस जानवर हैं। लौटते कुली आदि द्वारा पुनः पिचेरु तालाव वहाँ से आत्मकोर मोटर या वण्डी से पुनः यथेष्ठ दिशा में सब यात्री चले जाते हैं।

यह संक्षेप में श्रीशैल यात्रा का क्रम वर्णन किया गया है।

३—अथ महाकालज्योतिर्लिङ्ग का प्रादुर्भाव

भाषार्थ—ऋषिगण सूतजी से बोले कि हे सूतजी! आप सब वस्तु को श्रीव्यासजी की कृपा से जानते हैं। ज्योतिर्लिङ्गों की कथा को श्रवण कर हम लोगों को तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ इसलिये आप

विशेष रूप से उसको फिर भी कहिये। सूतजी बोले कि हम आप लोगों के सत्संग से धन्य और कृतकृत्य हुये ॥ २ ॥ अब आप लोग सुनिये जो कथा पापराशि को नाश करने वाली है उसको कहेंगे। सूतजी बोले कि सब प्राणियों को मुक्ति देने वाली अवन्ती (उज्जैनी) नगरी है ॥ ३ ॥ उस अवन्ती नगरी में महापवित्र और लोगों को पवित्र करने वाली क्षिप्रानदी वर्तमान है। ऐसी अवन्तीपुरी में सर्व कर्मों को करने वाला एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था ॥ ४ ॥ वह ब्राह्मण स्वाध्याय (वेदाध्ययन) करने वाला, वेद कर्म में तत्पर, अग्न्याधानादि से युक्त और सदा शिव पूजा में लगा रहता था ॥ ५ ॥ वह ब्राह्मण सदा पार्थिव शिवमूर्ति की पूजा करता था। वह वेदप्रिय ब्राह्मण अपने सब कर्मों के फलों को प्राप्त कर सम्यग्ज्ञानवान् जिस गति को प्राप्त करते हैं ऐसी सद्गति को प्राप्त हो गया। उसके चार पुत्र थे और वे भी ऋषि सदृश उसी की तरह थे ॥ ७ ॥ सबों में बड़े पुत्र का नाम देवप्रिय था, उससे छोटे का नाम प्रियमेध था, तीसरा सुव्रत और चौथा धर्मवादी था ॥ ८ ॥ वे सर्वधर्म के धारण करने वाले, शिवपूजा में तत्पर, धर्म के आधार वाले, सदा शुभ मूर्ति अपने पिता से किञ्चित् भी कम न थे ॥ ९ ॥ उन लोगों के पुण्य और प्रताप से जिस प्रकार से शुक्ल पक्ष में निरन्तर चन्द्रमा बढ़ता है; उसी प्रकार पृथ्वी में सुख बढ़ा था ॥ १० ॥ उसी प्रकार उन चारों ब्राह्मणों के गुण सबको सुख देने वाले उस नगरी में बढ़ रहे थे। उस समय वह अवन्तिकापुरी नाम्नी नगरी ब्रह्म तेजोमयी हो रही थी ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि इसी समय वहाँ पर जो हुआ सो सुनो! रत्नमाल नामक पर्वत पर एक महाअसुर जिसका नाम "दूषण" था हुआ ॥ १२ ॥ दूषण बड़ा बलवान्, दैत्यों का राजा सदैव धर्म से द्वेष रखने वाला था, ब्रह्माजी के वरदान से वह जगत्

को तुच्छ समझता था ॥ १३ ॥ पृथ्वी पर वैदिक और स्मार्त सभी धर्मों को उस दुष्ट ने इस प्रकार नाश कर दिया, जैसे सिंह शशक को नाश करे ॥ १४ ॥ प्रत्येक तीर्थ क्षेत्र और वनों में ऋषियों से सेवित जितने वैदिक धर्म थे, उन सबों को उसी एक दुष्ट असुर ने दूर कर दिया, वैदिक धर्म कहीं नहीं दिखाई पड़ता था ॥ १५ ॥ १६ ॥ परन्तु अवन्तीपुरी धर्म युक्त उस समय में भी थी, जब उस असुर ने ऐसा देखा, तब उसने जो किया वह सुनो ॥ १७ ॥ वह बड़ी भारी आसुरी सेना लेकर अवन्तीपुरी के उन ब्राह्मणों को घेर लिया, और बोला कि ये दुष्ट ब्राह्मण हमारा वचन क्यों नहीं मानते ॥ १८ ॥ वह अपने सैनिक दैत्यों से बोला कि सर्व देवता और सब राजागण लोक में मैंने वश में कर लिया है, तो क्या इन ब्राह्मणों को वश में करने को मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ १९ ॥ वह अपने चार महा असुरों को बुलाकर बोला, कि उन ब्राह्मणों से कहो कि यदि जीने की इच्छा हो तो वैदिक धर्म, देव-पूजा, और शिवपूजादि को त्याग कर सुख भागी बनें ॥ २० ॥ यदि ऐसा हमारा कहना न मानेंगे तो उनके जीवन में निवास-स्थान में संदेह होगा, यह निश्चय देकर बड़े बलवान् चार दैत्यों को चारों दिशाओं में उसने भेजा, प्रथम जिस प्रकार प्रलय काल उपस्थित होता है, वैसा ही संकट उपस्थित हुआ। ब्राह्मणों ने उन राक्षसों का वचन सुन कर कुछ भी दुःख नहीं किया, और वे अपने स्थान पर बैठे शिवध्यान में तत्पर रहे। धैर्य धारण कर वे लोग लेश मात्र भी अपने ध्यान से चलायमान नहीं हुये और यह निश्चय किया कि ये दीन राक्षस शंकर के सामने क्या वस्तु हैं। इतने ही समय में उन राक्षसों ने उस अवन्तिकापुरी को वेष्टित कर लिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँ के सब लोग उन राक्षसों से पीड़ित हो, उन ब्राह्मणों के पास गये, और बोले कि हे

स्वामिन् अब क्या करना चाहिये, दुष्ट राक्षस आ गये हैं ॥ २५ ॥ बहुत लोग मारे गये और अब समीप आ गये हैं, उन लोगों के बचनों को सुन वे ब्राह्मणवर्य बोले ॥ २६ ॥ कि शत्रु को भय देने वाली सेना हमारे पास नहीं है, और न अस्त्र शस्त्र ही हैं जिनसे ये लौटाये जा सकें ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोले कि हम लोग तो ऐसा समझते हैं कि एक सामान्य पुरुष को भी अपने आश्रम का मान होता है तो क्या महासमर्थ श्रीशंकरजी को न होगा ॥ २८ ॥ अब श्रीशंकरजी ही रक्षा करेंगे, श्रीशंकर को छोड़ अब कोई अन्य शरण नहीं है, इस प्रकार स्थिरता को धारण कर श्रीशिवजी का पार्थिव पूजन आरम्भ किया ॥२९॥ चित्त को एकाग्र करके, पूरक, कुम्भक, रेचक द्वारा प्राणायाम परायण होते हुये सम्यक् ध्यानावस्थित हो गये ॥ ३० तब दैत्यों ने मार डालो, काट डालो इत्यादि शब्दों को कहते हुये धावा बोल दिया, परन्तु ध्यान परायण उन ब्राह्मणों ने कुछ नहीं सुना ॥ ३१ ॥ इसी समय इस प्रकार की दशा देख उस पार्थिव शिवपूजास्थान में बड़े शब्द के साथ एक गड्ढा हो गया, और उसी गर्त से महाकाल शिवज्योति-लिंग उत्पन्न हो गया ॥ ३२ ॥ और श्री शंकरजी ने उन दैत्यों से कहा कि ब्राह्मणों के समीप मत जाओ, दूर भाग जाओ, ऐसा कहते ही अपने हुँकार से सबों को भस्म कर दिया ॥ ३३ ॥ कुछ सैन्य तो श्रीशंकरजी ने नष्ट कर दिया, और सैन्य भग गई, परमात्मा श्रीशंकरजी ने दूषण दैत्य को नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार भगवान् भास्कर को देखकर अन्धकार क्षय को प्राप्त होता है, उसी भांति महाकालशिव को देख दूषण दैत्य की सेना नष्ट हो गई ॥ ३५ ॥ देवताओं की दुंदुभी बजने लगीं, और आकाश से फूलों की वृष्टि हुई। प्रसन्न हुये श्रीशङ्करजी ने ब्राह्मणों को आश्वासन दिया ॥ ३६ ॥ वे ब्राह्मण लोग भी देव देव

श्रीशङ्करजी से भव बन्धन से मुक्ति मांगी और यह कहा कि हे नाथ लोक की रक्षा निमित्त आप यहाँ निवास करें ॥३७॥ ऐसा वर माँगने पर भगवान् श्रीशङ्करजी ने उन ब्राह्मणों को मुक्ति प्रदान किया, और भक्तों की रक्षा निमित्त, स्वयं उसी गर्त (गड्ढे) में जो अति सुन्दर था निवास किया ॥ ३८ ॥ और मुक्ति को प्राप्त कर वे ब्राह्मण चारो दिशाओं में श्रीशंकरजी के आस पास एक कोश के अन्तर में लिंग रूप से स्थित हो गये ॥ ३९ ॥ इस प्रकार श्रीमहाकालेश्वर त्रिभुवन में प्रसिद्ध हुये। सूतजी बोले कि हे ऋषिवर्य्यो ! श्री-महाकाल शङ्कर का दर्शन करने पर स्वप्न में भी दुःख नहीं आता ॥ ४० ॥ जिन जिन कामनाओं से युक्त हो श्रीमहाकालजी का सेवन प्राणी करते हैं, उस फल को अवश्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार भक्त वत्सल भगवान् श्रीमहाकाल की उत्पत्ति कही, और भी उत्तम वचन श्रवण करो ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाकाल ज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव की कथा समाप्त हुई।

३—अथ महाकालज्योतिर्लिङ्गयात्रा का वर्णन

अवन्तिका (उज्जयिनी)

इस पुरी का नाम भारतवासी कौन नहीं जानता। यह किसी समय महाराज वीरविक्रमादित्य की राजधानो थी, उस समय इसकी सज धज को क्या कहना है, परन्तु कराल काल की महिमा भी अत्यन्त अद्भुत है। जहाँ झोपड़ी भी नहीं वहाँ विशाल गगन चुम्बी महलों से युक्त नगर दिखाई पड़ते हैं। और जहाँ अति रमणीय नगर रहते हैं, वहाँ जङ्गल दिखाई देते हैं। बस यही बात अवन्तिका की भी है। यहाँ एक फाटक का प्राचीन भाग अब भी खड़ा हुआ, महाराज वीर विक्रम की स्मृति का उद्भावक है। कहा जाता है कि यह फाटक महाराज विक्रमादित्य के समय का है।

और कोई वैसा प्रमाण अब महाराज विक्रमादित्य के समय का नहीं दिखाई देता। यह पुरी मालवादेश में है, और आज दिन गवालियर स्टेट के अन्तरभूत है। यहाँ का सब प्रकार का प्रवन्ध महाराज गवालियर के ही तरफ से होता है। आजकल भी इस पुरी की जन संख्या लगभग एक लाख के भीतर ही जो कि ६० या ७० हजार कही जाती है। वस्ती सुन्दर है। वड़ी बड़ी सड़कें साफ सुथरी सदैव रहती हैं। वाजार भी वड़े वड़े हैं, सभी प्रकार का व्यापार यहाँ होता है। नगर धन धान्य पूर्ण है। यह एक रेलवे जंक्शन भी है। यहाँ आने के लिये मार्ग यद्यपि सभी तरफ से हैं। पर यू० पी० (संयुक्त प्रान्तीय) लोगों के लिये झाँसी, वीना, और भूपाल होकर मार्ग सीधा है। प्रत्येक प्रान्त के लोगों के लिए उनके निवास स्थान से रेलवे मार्ग भिन्न भिन्न हैं। यह यात्री स्वयं निश्चय कर लेवें। उज्जैन (अवन्तिका) यह बहुत प्राचीन नगरी क्षिप्रा नदी के तट पर बसी हुई है। क्षिप्रा नदी यद्यपि बहुत वड़ी नदी नहीं है, और गर्मियों में जल इसमें बहुत कम रह जाता है। तथापि माहात्म्य की दृष्टि से यह बड़ी है। अन्य ऋतुओं में इसमें जल प्रचुर रहता है कार्तिक फाल्गुण चैत्र तक इसमें प्रचुर जल निर्मल मनोहर बहा करता है। इसका तट बड़ा सुहावना ज्ञात होता है। किनारे किनारे देव मन्दिर भी बने हुये हैं और जहाँ तहाँ पक्के घाट भी बने हैं।

श्रीमहाकालेश्वरजी के सामने घाट पक्के बने हुये हैं। क्षिप्रा के तट से श्रीमहाकाल ज्योतिर्लिङ्ग का मन्दिर लगभग डेढ़ फर्लाङ्ग होगा। मन्दिर की मनोहरता, सामने सन्निकट ही सरोवर और मन्दिर से कुछ ऊँचे का, देव मन्दिरों से युक्त एक विपुल प्राङ्गण अत्यन्त रमणीय चित्त में सात्त्विकता के भाव भरने के लिये पर्य्याप्त है। मन्दिर के सामने कुछ निम्न भाग में सरोवर सदैव

जलपूर्ण दृष्टिगोचर होता है यह सरोवर शिवगङ्गा तीर्थ स्वरूप है। चारो तरफ से पक्के पाषाण के घाट बने हुए हैं। इस जलाशय से मन्दिर की शोभा प्रत्येक समय में अतीव रम्य ज्ञात होती है, पर सायं प्रातः तो कहना ही क्या है। सरोवर से ऊपर कतिपय देव मन्दिरों से युक्त एक बड़ी दालान सी है इसके अन्तिम कोने में माली लोग फूलों की डालियाँ बेंचा करते हैं। यात्रियों को सरोवर में आचमनमार्जनादि अथवा श्रद्धानुसार स्नानादि कर श्रीमहाकालेश्वरजी की पूजा सामग्री तैयार कर लेना चाहिये। फिर मन्दिर के भीतर जाना चाहिये। भगवान् महाकालेश्वरजी की मूर्ति शास्त्र प्रमाणों से युक्त एक गर्त में है नीचे कुछ सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। सावधानी से उतर कर भगावान् भक्त वत्सल महाकालेश्वरजी का दर्शन करते ही त्रिताप दूर हो जाते हैं। और चित्त में सात्त्विकता उत्पन्न होकर श्रद्धा, भक्ति की तरङ्ग उमड़ पड़ती हैं। ज्योतिर्मय भगवान् महाकालेश्वरजी का लिङ्ग एक हाथ से कुछ अधिक ऊँचा, बहुत स्थूल नहीं है। ऊपर कुछ भाग लाल रंग का है, और शेष अधिक सफेद नहीं है। देव के दर्शन होते ही यात्रियों के हृदय में यह भाव अवश्य जाग पड़ेगा कि आज हम परम पवित्र और कृतकृत्य हुए, यही मूर्ति का सबसे उच्च महत्त्व प्रत्यक्ष सिद्ध है। राजत अर्घा है, चारों तरफ भक्त विद्वान् ब्राह्मण मण्डली तरह तरह की वेद विधियों से अभिषेकादि कृत्य कर शिवाराधन करते रहते हैं। यहाँ पहुँच कर श्रीदेवदेव महादेव का अभिषेकादि पूजन अर्चन अवश्य करना चाहिये। यदि स्वयं न कर सके तो पवित्र विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा करावे। और यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन दानादि से सन्तुष्ट करना चाहिये। क्योंकि अवन्तिका मोक्षप्रद सात पुरियों में एक है। और ज्योतिर्मय भक्तवत्सल श्रीशिवजी के प्रादुर्भाव का स्थान है।

महत्त्व की दृष्टि से एवं ऐतिहासिक अन्य दृष्टियों से भी यह एक आर्य जाति के मन्तव्यों का ऊँचा स्थान है। भगवान् महाकाल के सामने सर्वधातुमय श्रीनन्दिकेश्वरजी का भी दर्शन पूजन करना चाहिये। सर्व प्रकार से दर्शन पूजन द्वारा चित्त को संतुष्ट कर बाहर आकर जब ऊपर की फ़र्श के तरफ जायंगे। तो ऊपर चढ़ने के मार्ग के पास ही एक छोटा सा भगवान् विष्णु का मन्दिर पड़ता है, इनका दर्शन पूजन कर ऊपर पधरे हुये श्रीॐकारेश्वरजी का दर्शन पूजनादि करना चाहिये। इनका मन्दिर भी बड़ा है; और इसी फर्श में कई मन्दिर श्रीशङ्करजी एवं श्रीभगवतीजी के पड़ते हैं। सब के दर्शनादि कर श्रीशिवजी के प्रधान अगलेश्वरजी का दर्शन करना चाहिये। यहाँ दीपावली के समय दीपक जलाने के लिये दो स्तम्भ खड़े हैं। दीपावली में जब उनमें दीपक जलाये जाते हैं; तब शोभा देखते ही बनती है। दर्शन कृत्य समाप्त कर अपने स्थान पर आ भोजन विश्राम करना चाहिये। ठहरने का स्थान यों तो यात्रियों को जहाँ अनुकूल हो वहाँ ठहर सकते हैं। एक धर्मशाला स्टेशन पर ही अच्छी बनी हुई है, पर वहाँ से श्री-महाकालेश्वरजी का दर्शन कुछ दूर पड़ेगा। इसलिये हमारे विचार से यात्रियों को क्षिप्रा के तट पर ही फतेहपुरियों की धर्मशाला में ठहरना ठीक ज्ञात होता है। यहाँ ठहरने से दर्शन स्नान, शौचादि क्रिया और सभी बातों की सुविधा हो सकती है। बाजार भी अधिक दूर नहीं है। क्षिप्रा नदी का स्नान बड़े महत्त्व का है। यहाँ स्नान, तर्पण, और पिण्डदानादि भी किया जाता है। क्षिप्रा स्नान करके जब यात्री श्रीमहाकालेश्वरजी के दर्शन को चलते हैं; तब मार्ग में एक श्रीभगवतीहरसिद्धिमाताजी का मन्दिर बड़ा ही महत्त्वशाली पड़ता है। इसलिये इनका दर्शन अवश्य करना चाहिये। यह एक प्राचीन स्थान है। मार्ग में एक विशाल सरोवर

पड़ता है। जो किसी समय कमलों से भरा रहता था; पर अब वह बात नहीं है। मन्दिर के पास ही एक विशाल गणपति विराजमान हैं। ये सिद्धिप्रद हैं, अतः इनका भी दर्शन नित्य दर्शन में है। इसके बाद श्रीमहाकालेश्वरजी का मन्दिर पड़ता है।

यात्रियों को उचित है कि यहाँ कम से कम दो बार तो अवश्य श्रीमहाकालजी का दर्शन करें। सायंकाल सैकड़ों नरनारी दिव्य-रूप कालिदासजी के मेघदूत के वर्णन के अनुसार दर्शनार्थी दिखाई पड़ते हैं। भगवान् शङ्कर की आरती का दर्शन कर अपने आसन पर आ जाना चाहिये।

दूसरे दिन क्षिप्रा नदी में स्नानादि नित्य कृत्य समाप्त कर क्षिप्रा तट से पुरी की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। मार्ग में कई चमत्कारिक दृश्य देखने में आयेंगे। एक उड़ी हुई मस्जिद मिलेगी, सुना जाता है कि यह मस्जिद उड़ती हुई कहीं जा रही थी इसे देख एक सिद्ध पुरुष ने कहा कि बस यहीं ठहर जा, तब से वह मस्जिद वहीं रह गई। फिर श्रीऋणमुक्तेश्वरजी का दर्शन होता है। कुछ दूर आगे चलने पर क्षिप्रा के तट पर ही एक ऊंचा करारा सा मलेगा, यहाँ पर एक बड़ी अद्भुत गुहा मिलेगी जो कि श्रीमहाराज भर्तृहरिजी का गुफा कहलाती है। इसके भीतर अंधकार सदैव रहता है इसलिये सावधानी से प्रकाश के सहारे इसमें घुसना चाहिये। भीतर गुफा के भीतर गुफा इस तरह से कई गुफायें मिलेंगी।

यह गुफा बहुत प्राचीन है; और उज्जैन की द्रष्टव्य वस्तुओं में यह एक है। यह गुफा महाराज भर्तृहरि की तपस्या की गुफा कहती है; गोपीचंद ने भी इसी में तप किया था, ऐसी कहावत है। गुफा के बाहर गोसाईं लोग बैठे रहते हैं, इन्हें दो-चार पैसे देने से ये लोग ठीक तरह से दिखा देते हैं।

इसके अनन्तर श्रीसन्दोपनमहर्षिजी के आश्रम जाना चाहिये। सन्दोपनमहर्षिजी भगवान् श्रीकृष्णाचन्द्रजी के विद्यागुरु हैं; यहीं पर भगवान् श्रीनन्दनन्दन यशोदानयनानन्द ने श्रसुदामाजी के साथ विद्याध्ययन किया था। गुरुजी के लिये समिधाओं (आम्र की लकड़ियों) का बोझ ढाया था। गुरुदक्षिणा में, मरे हुये गुरुपुत्र को सजीव किया था। यह स्थान वृक्षों से सुशोभित है। दो तीन मन्दिर बने हुये हैं एक में भगवान् के दर्शन हैं। सामने एक कुण्ड है। इस आश्रम के पास और भी द्रष्टव्य स्थान और दर्शन हैं। इस तरह प्रदक्षिण समाप्त कर सायंकाल अपने निवास स्थान पर आजाना चाहिए। नगर में अहल्याबाई के गोपाल मन्दिर का भी दर्शन अवश्य करना चाहिए। यहाँ का बाजार भी अच्छा है।

तीसरे दिन प्रभात में कुछ शीघ्रता के साथ स्नानादि कर नगर से बाहर तीन मील की दूरी पर मङ्गलेश्वर महादेवजी का दर्शन करना चाहिये। ये सब स्थान प्रसिद्ध स्थान अवन्तिका में हैं। अंगपाथ होकर मार्ग जाता है। मार्ग में और भी कई सुरम्य साधुओं के आश्रम पड़ते हैं। सवारी भी जाती है। श्रीमङ्गलेश्वर महामंगलकारी एक निर्जन स्थान में क्षिप्रा के तट पर ही विराजमान हैं। क्षिप्रा का दृश्य यहाँ पर बड़ा सुरम्य है जल भी यहाँ प्रचुर भरा है। ऊपर टीले पर श्रीमङ्गलेश्वरजी का मन्दिर बना है; बड़ा ही अनुपम दर्शन है। पुजारी आदि के न भी रहने से दर्शन पूजन होता है वहाँ चन्दनादि सब रहा करता है। यात्रीगण अपनी श्रद्धानुसार दर्शन पूजन कर सकता है। यहाँ बड़े बड़े वृक्ष बहुत हैं। यहाँ साधू भी वृक्षों के चबूतरों पर धुनी रमाये कभी कभी रहते हैं। यहाँ कुछ देर ठहर कर कुछ जलपान कर लेवे। तब श्रीसिद्धिनाथजी महादेव के दर्शनों को जाना चाहिए। श्रीसिद्धिनाथजी श्रीमङ्गलेश्वरजी के सामने ही क्षिप्रा नदी के उस पार हैं। नदी

पार करे तो कुछ दूर नहीं है, पर नाव आदि का प्रबन्ध न होने से क्षिप्रा के किनारे किनारे पुल तक आना और पुल होकर श्रीसिद्धिनाथ जी को जाना यह ठीक है। यह स्थान बड़ा प्रसिद्ध है। हर समय यात्री आया जाया करते हैं; हमेशा सवारियाँ यहाँ पर मिलती हैं। श्रीसिद्धिनाथजी के आस पास और भी मन्दिर बने हैं; पर यहाँ पर प्रधान श्रीसिद्धिनाथजी ही हैं। दर्शन बड़ा मनोहर है क्षिप्रा में पक्का घाट बना हुआ है। ऐन तट पर मन्दिर है मन्दिर छोटा सा और एक वट भी है, जो सिद्धिवट कहाता है। स्थान बड़ा ही रम्य है। मछलियाँ क्षिप्रा में किल्लोल करती रहती हैं, पण्डा पुजारी यहाँ पर बने रहते हैं। स्नान दर्शन पूजन कर यहाँ कुछ खान पान कर लेना चाहिए। अनन्तर यदि इच्छा हो तो यहाँ से ६ मील की दूरी पर क्षिप्रा के तट पर प्राचीन इमारतें जो बड़ी ही उत्तम बनी हैं; और कितने ही क्षिप्रा के कुण्ड बने हैं जिन्हें देखने के लिए दूर से मनुष्य आते हैं। सवारी द्वारा जाकर शीघ्र देखना चाहिए। यह भी एक द्रष्टव्य स्थान है। सम्भव है कि किसी समय वह एक तीर्थ भी रहा हो। यहाँ से लौट कर पुल के पास इसी पार पुलिस चौकी के पास सवारी छोड़ देना चाहिए।

पुलिस चौकी से दो तीन फर्लाङ्ग पर एक करौंदी के भैरवजी का बहुत प्राचीन और बहुत बड़ा मन्दिर है। मन्दिर क्षिप्रा के तट पर ही है; यहाँ बस्ती नहीं है साधारण निर्जन स्थान है; रात में यहाँ कोई नहीं रहता, दिन में एक पुजारी आदि कोई रहते हैं। इस स्थान की रमणीयता, और उत्तमता को क्या कहें देखते ही बनता है। शांतिदेवी का शाश्वतिक वास रहता है, यह भूमि स्वयं इस बात को कहती है कि मैं एक सिद्ध भूमि हूँ। इस भूमि पर जागृतदेव श्रीभैरवजी विराजमान हैं। मूर्ति बड़ी ही मनोहर है; ये करौंदी के भैरवजी कहे जाते हैं।

सुना जाता है कि किसी समय यह मूर्ति इसी जंगल में एक करौंदी की जड़ के पास पड़ी रहती थी; कोई जानता नहीं था कि ये भैरवदेव हैं। उस समय उज्जैनी में एक क्षत्रिय राजा था। उसके ऊपर मुसल्मानों ने चढ़ाई कर उज्जैन को घेर लिया। राजा बहुत घबराया; और एक सिद्ध पुरुष के पास जो उस समय उज्जैनी में रहते थे; जाकर अपना दुःख सुनाया और उनके चरणों में गिर कर कहा कि महाराज रक्षा करो। महात्मा ने राजा को एक टुकड़ा रोटी का दिया, और कहा कि जाओ क्षिप्रा के तट पर उस पार करौंदी के भैरवजी से कहो कि अमुकसाधु ने आपके लिये यह रोटी भेजी है; इसे ग्रहण करो; ऐसा कह कर यह रोटी उनकी मूर्ति पर रख दो; और उनके सामने अपना दुःख निवेदन कर चले आओ। राजा ने ऐसा ही किया। रात में दुश्मन की सेना में श्रीभैरवजी दण्ड लेकर पहुँच गये; और इस तरह उन दुष्ट मुसल्मानों को पीटा कि उन्हें भागते रास्ता न मिला। प्रभात में फौजों का एक पुतला तक नहीं दिखाई पड़ा। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और भैरवजी को लाकर एक विशाल मन्दिर तैयार करा उसमें पधरा दिया, एक बड़ी जागीर भी लगा दी। अब भी कुछ जीविका मन्दिर में लगी है। और भी इनके बारे में किंवदन्ती सुनाई पड़ती हैं। परीक्षार्थ किसी रानी ने इन्हें मद्य पिलाया तो सम्पूर्ण नगर भर का मद्यपान कर गये। जो हो भगवान् की महिमा भगवान् जाने पर देखने से यह ज्ञात होता है कि मूर्ति अवश्य जागृत है। इसलिये यात्रियों को इनके दर्शनों का लाभ अवश्य लेना चाहिये।

बस अब पुल होकर क्षिप्रा के इस पार आ जाना चाहिये। मार्ग से दाहिने हाथ की तरफ झुकने से वृक्षों का एक बड़ा समुदाय दिखाई पड़ेगा, वहाँ जाने पर प्राचीन बहुत से देवदर्शन होते

हैं। बड़े बड़े विशाल इमली के वृक्ष अधिक हैं, यहाँ किन्हीं मन्दिरों में साधू लोग भी रहते हैं। और यहीं पर एक देवीजी का मन्दिर है; ये भगवतीजी बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध हैं। सुना जाता है कि महाकविकालिदासजी की आराध्यदेवता यही हैं। इनकी प्राचीनता, और महत्ता में इनका दर्शन ही प्रमाण है। यात्री इनके दर्शन से कृतकृत्य हो जाता है। माता की करुणामयी मूर्ति प्रसादोन्मुख ही प्रतीत होती है। यहाँ बस्ती नहीं है बल्कि थोड़ा घना जंगल ही है; इसलिये जानने वाले ही लोग इनका दर्शन कर सकते हैं। वहाँ की रमणीयता का सुख किसी एकान्तप्रिय महा-पुरुष के अनुभव का ही विषय है। सत्यव्रत दृढाराधक को वहाँ सिद्धि बहुत शीघ्र प्राप्त हो सकती है ऐसा अनुभव में आता है। वहाँ चल कर मार्ग में बहुत से सिद्धों के टीले पड़ते हैं। यह वहाँ के ज्ञाताओं से मालूम होता है। इन सब दृश्यों को देखते हुये। भर्तृहरि गुहा के पास से क्षिप्रा के किनारे किनारे अपने निवास स्थान पर आ जाना चाहिये।

उज्जैन (अवन्तिका) यह एक बहुत प्राचीनपुरी और ऐतिहा-सिक नगरी है। शास्त्र दृष्ट्या इसका बड़ा महत्त्व है। इसमें १२ वर्ष पर कुम्भ का बड़ा भारी मेला होता है। जिसमें भारतवर्ष के प्रत्येक वेष के साधू एकत्रित होते है। उस समय यहाँ की शोभा देखने योग्य होती है। क्षिप्रा के दोनों तरफ साधु दल पड़ा रहता है; और अपने अपने ऐश्वर्य के साथ बड़ी सज धज से सभी दल क्षिप्रावगाहन करते हैं। वैसाख मास भर वहाँ निवास करते हैं। अपने सदुपदेशों द्वारा जानता को कृतार्थ करते हैं। कुम्भ मेले का प्रबन्ध महाराज गवालियर के द्वारा होता है। अवन्तिका के आज दिन जो प्रसिद्ध तीर्थ और द्रष्टव्य स्थान हैं वे यात्रियों के सुभीते के लिये लिख दिया है, यों तो यह भूमि सम्पूर्ण तीर्थमय है।

४—श्रीॐकारेश्वर ज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भाव

श्रीसूतजी बोले कि हे ऋषिगण ! अब जिस प्रकार श्रीॐकार-नाथ ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति हुई वह सुनो, किसी समय भगवान् नारदजी गोकर्ण नामक शिवजी के दर्शनों को जाकर विन्ध्याचल में आये, विन्ध्य ने बहुत आदर पूर्वक उनका पूजन किया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पूजन करके विन्धाचल नारदजी से बोला कि हे महाराज ! हमारे में सब वस्तु विद्यमान है कुछ कमी नहीं है। गर्व नष्ट करने वाले नारदजी उस समय विन्ध्य के गर्व युक्त वचन सुनकर एक ऊँची श्वास लेकर स्थित हो गये यह देख विन्ध्याचल बोला कि आप के ऊँचे श्वास लेने का कारण हमारे में क्या न्यून दिखाई पड़ा ॥ ४४ ४५ ॥ यह सुन नारदजी बोले कि हे विन्ध्य सुनों, तुम्हारे में सब कुछ विद्यमान है पर सुमेरु तुम से ऊँचा है ॥ ४६ ॥ और देवता लोगों का पृथक् २ निवास स्थान है; यह बात तुम्हारे में नहीं है। ऐसा कहकर नारदजी जैसे आये थे चले गये ॥ ४७ ॥ पर विन्ध्याचल बड़ा संतप्त हुआ, और उसने कहा यदि ऐसा है तो हमारा जीवन धिग्जीवन है अब; विश्व के स्वामी श्रीशंकरजी की आराधना करके सुमेरु को जीतूँगा ॥ ४८ ॥ ऐसा निश्चय करके वह स्वयं वहीं पर, प्रथम ॐकार यंत्र के ऊपर आराधन किया और फिर वहीं पर पार्थिव शिवमूर्ति बनाकर आराधन किया; वह शिवध्यान में इस प्रकार लीन हो गया कि ६ महीना आसन से चलायमान नहीं हुआ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जब इस प्रकार उसने शिवजी की आराधना किया तब, भक्तों को इष्ट फल देने वाला, वेदों में जिस प्रकार का वर्णन है, योगियों को दुर्लभ ऐसे स्वरूप से भगवान् शङ्कर ने विन्ध्य को दर्शन दिया ॥ ५१ ॥ श्रीशंकरजी विन्ध्य से प्रसन्न होकर बोले कि

तुम मनोवांछित वर हमसे मांगो। विन्ध्याचल बोला कि देव-देव यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारी इच्छा के अनुसार हमको बढ़ने की शक्ति प्रदान करो ॥ ५२ ॥ श्रीशंकरजी ने विचारा, क्या करें; यदि यह ऐसा ही माँगता है तो देते हैं; पर दूसरे के दुःख देने के लिये हमको वरदान देना ठीक नहीं है। तब भी श्रीशंकरजी ने उसे बरदान दे दिया, और कहा कि जैसी इच्छा हो सो करो। इसी समय देवगण और दिव्यगुण युक्त महर्षि लोग श्रीशंकरजी की पूजा कर हे प्रभो अब यहाँ स्थित हो जाइये ऐसा बोले; लोक की रक्षा और सुख के हेतु भगवान् शंकर ने यह प्रार्थना स्वीकार की एक ज्योतिर्लिङ्ग ॐकारयंत्र पर और दूसरा पार्थिव मूर्ति पर प्रकट हुआ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार एक ही लिङ्ग दो रूप से प्रकट हुआ; जो लिङ्ग ॐकार यंत्र में प्रकट हुआ, वह ॐकार नाम से, और जो पार्थिव मूर्ति में प्रकट हुआ वह अमरेश्वर नाम से जिसे आजकल (ममलेश्वर) लोग कहते हैं विख्यात हुआ। तब देवगण भगवान् शंकर का पूजन कर और संतुष्ट हो; अनेक वरदान दिये और यह कहा कि जो लोग इन ज्योतिर्लिङ्गों का पूजन करेंगे; वे फिर गर्भवास में न आवेंगे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ और मन वांछित फल पावैंगे इसमें संदेह नहीं है, ऐसा कहकर देव लोग अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ६० । सूतजी बोले कि हे ! ऋषियों ! यह आप लोगों से ॐकारेश्वर की उत्पत्ति कही; अब इसके अनन्तर सर्वपाप नाश करने वाले श्रीकेदारनाथ के प्रादुर्भाव को कहेंगे ॥ ६१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणेज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिवर्णनं

नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थज्योतिर्लिङ्ग ॐकारनाथयात्रावर्णन

ॐकारनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग जिसकी उत्पत्ति का कारण और महत्त्वादि पीछे शिवपुराण के अनुसार वर्णन कर चुके हैं, इनके दर्शनों को जाने के मार्ग प्रत्येक देश निवासी के लिये भिन्न भिन्न होंगे। संयुक्तप्रांत (यू०पी०) के लोगों के लिये जी०आई०पी० रेलवे द्वारा, वम्बई प्रान्त के लोगों को भी जी० आई० पी० द्वारा खण्डवा तक आना चाहिये। जी० आई० पी० की एक शाखा झाँसी वीना आदि होती हुई उज्जैन में वी० वी० एण्ड सी० आई० रेलवे से मिलती है उज्जैन से इन्दोर होकर मोरोटक्का स्टेशन पर उतर पड़ना चाहिये; वस यही स्टेशन ॐकारनाथजी जाने को है। मार्ग यद्यपि प्रत्येक देश के रहने वालों के भिन्न भिन्न ही होंगे; पर सभी देशवासियों के लिये उज्जैन इन्दोर अथवा खण्डवा होकर मोरोटक्का स्टेशन ही आना पड़ेगा। जिस स्थान से यात्री श्रीॐकाररेश्वर जाना चाहें वहाँ से गाड़ी आदि का समय स्वयं निश्चय करलेवें।

मोरोटक्का स्टेशन पर गाड़ी से उतर यदि समय रहे और मोटर (लारी) मिल जावे तो यात्रियों को उचित है कि वे विष्णुपुरी की धर्मशाला में जो वहुत अच्छी बनी है, जाकर विश्राम करें; और यदि समय सायंकाल का हो तो स्टेशन मोरोटक्का के बाहर फाटक से निकलते ही धर्मशाला बनी है इसमें रात वितावें। यह धर्मशाला यद्यपि इतने सुविधा की तो नहीं है, पर इसमें रात विताई जा सकती है; इससे अच्छी सुविधा मोरोटक्का स्टेशन पर न मिलैगी। अथवा स्टेशन के मुसाफिरखाने में रहने पर यहाँ कुत्ते आदिकों का भय है अतः अपने सामान से सावधान रहना चाहिये। स्टेशन से १४ मील ॐकारनाथजी पड़ेंगे। यदि सामान

न हो और यात्री पैदल चलने का उत्साह रखता है, तो मार्ग के जङ्गली दृश्य को देखता हुआ बड़े आनन्द से जा सकता है। मध्य मार्ग में सघन वृक्षों से घिरा हुआ सुन्दर सरोवर पड़ता है जो इन्दोर की अहल्याबाई का बनवाया कहा जाता है। मार्ग का प्राकृतिक सौन्दर्य सुख वही पा सकता है जो पैदल यात्रा करेगा। लारी (मोटर) भी ।) किराया देने से बड़े आराम से १ घण्टे में पहुँचा देगी। अब यात्रियों को यह बताना आवश्यक है कि इस तीर्थ में तीनपुरी हैं। ब्रह्मपुरी और विष्णुपुरी तो नर्मदा के इसी पार जहाँ यात्री मोटर से उतरेंगे वहीं पड़ेंगी। पर रुद्रपुरी जहाँ श्रीॐकारेश्वरजी विराजमान हैं; वह नर्मदा के उस पार है। उस पार जाने को, डोंगीवाले को)॥ देकर जा सकते हैं। साधु लोग योंही चले जाते हैं। यहाँ सुन्दर धर्मशालायें दोनों तरफ यानी ब्रह्मपुरी, विष्णुपुरी में और रुद्रपुरी में बनी हैं। जो कि ठीक नर्मदा के उपकण्ठ पर ही हैं। यह यात्री की स्वेच्छा पर निर्भर है कि वह जिस पार चाहे ठहर सकता है, पर रम्यता और आनन्द उस पार (रुद्रपुरी) में अधिक प्रतीत होता है। यदि इस पार विष्णुपुरी की धर्मशाला में प्रथम ठहरे तो प्रभात कालीन नित्यकृत्य समाप्त कर नर्मदाजी स्नान करे, और पूजा की समस्त सामग्री तैयार कर लेवे। स्नान कपिलगंगा और नर्मदासंगम पर करना अधिक अच्छा है। अनन्तर ब्रह्मपुरी में विराजमान श्रीअमरेश्वरजी जिन्हें लोग ममलेश्वर कहा करते हैं दर्शन करे। ये ज्योतिर्लिङ्ग हैं यह तो ज्योतिर्लिङ्ग उत्पत्ति पढ़ने से यात्रियों को ज्ञात ही है।

इनका विधि विधान से पूजन अभिषेक आदि कर तथा ब्राह्मण तीर्थवासियों को तुष्ट कर और मन्दिर भी जो थोड़े अन्तर में बने हैं दर्शन कर लेवें। अमरेश्वरजी का मन्दिर और मूर्ति बहुत प्राचीन ज्ञात होती है। यहाँ के सघन वृक्ष और स्थान की रम्यता

तापत्रय संत्तापित हृदय को अतीव शान्तिप्रद है। यह ज्योतिर्लिङ्ग प्रायः १ हाथ ऊँचाई का अत्यन्त सुन्दर है; यहाँ भीड़-भाड़ प्रायः नहीं रहती शान्ति पुरस्सर दर्शन भली भांति होते हैं। इस प्रकार दर्शन पूजन कर विष्णुपुरी में भगवान् विष्णुदेव के दर्शन करने चाहिये। पास ही गोंसाई साधुओं का एक अखाड़ा भी है। इन सब दर्शनों को समाप्त कर अपने स्थान पर आ विश्राम करना, सायंकाल नर्मदा के पुलिन की शोभा, प्रवाह की अनुपम छटा देखते ही बनती है। यह सब दृश्य धर्मशाला की ऊपरी छत से देखने में और भला दिखाई पड़ता है। इस पार नर्मदा के किनारे दो एक साधु कुटीर भी हैं। यदि अधिक शान्ति का आनन्द लेना हो तो वस्ती से वाहर प्रवाह की तरफ दो ही तीन फर्लाङ्ग जाने पर एक दम शान्ति मिलती है, वहाँ नर्मदा के तट पर तरह तरह के पषाण और वालू के मैदान मिलेंगे, जहाँ से नर्मदा की छटा और उस पार रुद्रपुरी की बस्ती श्रीॐकारनाथजी का मन्दिर पहाड़ के मध्य भाग में स्थित, भिलारे राजा का मकान दूर से वड़े भले मालूम पड़ते हैं। भोजन बनाकर खानेपीने की सुविधा इन स्थानों में वड़ी ही अच्छी है लकड़ियों की कमी नहीं है। सघन जङ्गली वृक्षों की शीतल छाया युक्त स्वच्छ परम पवित्र वालू के मैदानों में सामने नर्मदाजी के कलरव से सहृदय पुरुष की आनन्द तन्त्री भी वजने लगती है। सूखा रूखा भोजन भी वड़ा ही प्रिय लगता है। विजयासेवी पुरुष को तो यहाँ अधिक आनन्द लाभ की सामग्री है। कविता सामग्री यहाँ पूर्णरूप में प्रस्तुत है। यह सब आनन्द उसी को लब्ध हो सकता है जिसका हृदय विशाल एकान्त शान्ति प्रिय, और प्राकृतिक सौन्दर्यदर्शन लुब्ध है। तीर्थ भूमियों में यही महत्त्व है। इस प्रकार आनन्द प्राप्त कर सायंकाल अपने निवास स्थान पर रात बिता दे। प्रभातकाल में डोंगी में बैठ उस पार

रुद्रपुरी में जहाँ श्रीॐकारेश्वरजी विराजमान हैं पहुँच जाना चाहिये। नर्मदा के ठीक घाट पर ही बड़ी सुन्दर और सुखद धर्मशाला बनी है, उसमें अपनी सामग्री मैनेजर की आज्ञानुसार किसी कमरे में रख ताला लगा देवे और श्रीनर्मदाजी के स्नान की तैयारी करे।

श्रीॐकारेश्वर

धर्मशाला के कुछ पश्चिम से लेकर पूर्व कुछ दूर तक घाट पक्के बने दृष्टि गोचर होते हैं, इन घाटों में सबसे महत्वशाली घाट ठीक श्रीॐकारनाथजी के मन्दिर के सामने नीचे है। बस इसी घाट में स्नान करना चाहिये। यहाँ नर्मदाजी में अथाह जल भरा है इस लिए यात्रियों को जो कि तैरने नहीं जानते बड़ी साव-धानी से स्नान करना चाहिये। नर्मदाजी के पूजन की सामग्री यद्यपि वहीं घाट पर भी मिल जाती है, तथापि यात्री अपनी श्रद्धा-नुसार सामग्री तैयार कर लेवें, और सर्वपापप्रशमिनी श्रीनर्मदा-जी में सप्रेम भगवान् का ध्यान कर स्नानकर श्रीनर्मदाजी का विधि पूर्वक पूजन प्रणाम करे। यात्रीगणों को उस समय यह स्वयं ज्ञात हो जायगा कि हम और हमारे पूर्वज पुनीत हो गये इस प्रकार सत्त्वगुणमयी निष्पाप वृत्ति का प्रवाह नर्मदाजी के प्रवाह की भांति हृदय में भी उछलने लगता है। थोड़ी देर तक यात्रियों को अपनी आँखें इस आनन्द से तृप्त करना चाहिये; क्योंकि नर्मदाजी का ऐसा पुलिन और आनन्द वर्धक प्रवाह शायद ही कहीं देखने में आवे। ऊपर पहाड़ के हरे भरे सघन वृक्ष वायु के झकोरों से नर्मदाजी के दृश्य से तृप्त हो मानो शिर हिला कर आनन्द का अनुमोदन कर रहे हैं। नीचे पत्थर की चट्टानों से सहस्रों वर्ष से लड़ती हुई श्रीनर्मदाजी बड़े वेग से हर हर श्रीॐकार की झंकार से उस स्थान को प्रतिध्वनित बनाती हैं।

घाट से पूर्व और पश्चिम ओर कुछ दूर जाने से श्रीनर्मदाजी के तरह तरह के दृश्य दिखाई पड़ेंगे। किनारे कहीं कहीं साधुगण भी कुटीर रमाये दृष्टिगोचर होंगे। सायं प्रातः यहाँ जो आनन्द वर्षता है; उसे छोड़ने को चित्त नहीं चाहता। श्रीॐकारनाथजी का पर्वत बहुत ऊँचा नहीं है; पर्वत के मध्य भाग में यहाँ के भिलारे राजा का मकान बना है, जो बाहर से या नर्मदा तट से देखने में बड़ा भला मालूम होता है। श्रीॐकारजी पर्वत की अधीत्यका में विराजमान है; सामने कुछ बस्ती और एक छोटा सा बाजार है जिसमें पूजोपयोगी एवं खाने पीने की सामग्री मिल जाती है। यात्री गणों को नर्मदा स्नान करके सीढ़ियों द्वारा ऊपर श्रीॐकारनाथजी के दर्शनों को जाना चाहिये। पूजा सामग्री और जल आदि लेकर जब मन्दिर में प्रवेश करने लगेंगे तो यहाँ भी)॥ दो पैसे टैक्स देना पड़ता है; यह टैक्स वहाँ के भिलारे राजा लेते हैं। यही इनकी जीविका है; यह आमदनी और कुछ जंगल आदि की आमदनी मिलकर भगभग १ लाख के भीतर ही इनकी कुल आमदनी है। टैक्स देकर यात्रीगण जब मन्दिर के भीतर घुसेंगे तो उन्हें कुछ गहराई में जाना पड़ेगा; प्रायः शिवलिङ्ग कुछ गर्त में ही उत्पन्न हुये हैं। श्रीॐकारनाथजी का दर्शन कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। मूर्ति अकृत्रिम बहुत प्राचीन ज्ञात होती है। यह ज्योतिर्लिङ्ग भी लगभग १ हाथ ऊँचा है। यात्रीगण विधान से पूजन अभिषेकादि से छुट्टी पा, और जो देव मन्दिर में पधरें हैं उनका दर्शन पूजन करें। सामने श्रीनन्दीश्वरजी विराजमान हैं। मन्दिर के दूसरे भाग में श्रीमहाकालेश्वरजी भी पधरे हैं। कुछ नीचे उतर कर श्रीरामजी का भी मनोहर दर्शन होता है; और पास ही श्रीगणेशजी भी बैठे हैं। सब देव मन्दिरों में दर्शन कर याचक, ब्राह्मणादिकों को यथाशक्ति सन्तुष्ट कर

यात्रियों को अपने मुकाम पर आ जाना चाहिये; और भोजनादि से निवृत्त हो विश्राम करना चाहिये। दूसरे समय श्रीनर्मदाजी का आनन्द लेना चाहिये। धर्मशाला के ऊपर से देखने में बहुत ही उत्तम सभी तरफ दृश्य दिखाई पड़ेंगे। सायंकृत्य से निवृत्त हो समय पर श्रीॐकारनाथजी की आरती का दर्शन कर अपने स्थान पर विश्राम करें।

दूसरे दिन प्रभात में शीघ्रता से उठ स्नानादि कर श्रीॐकारजी का पूजन करें पहिले रात में ही कुछ मोहनभोग; पूँड़ी आदि बना लेना चाहिये। भोजनादि सामग्री और स्नानोत्तर पहिनने के वस्त्र पात्रादि ले श्रीॐकारजी की (ॐकारपर्वत की) प्रदक्षिणा करने को चल देना चाहिये। साथ में वहाँ का एक जानकार आदमी ले लेना चाहिये। श्रीॐकारनाथजी का प्रदक्षिण नाव द्वारा भी लोग करते हैं। पर मेरी समझ में नाव द्वारा प्रदक्षिण करना यह प्रदक्षिण नहीं बल्कि शैर करना हैं। प्रदक्षिण तो चरणों द्वारा ही चल कर होता है। और इसी का महत्त्व भी है। जो धनी और अधिक सुकुमार प्रकृति के हैं उन्हें नाव द्वारा ही घूमना अच्छा पड़ेगा; पर उन्हें वह आनन्द नहीं मिल सकता, जो पैदल प्रदक्षिण करने वाले को प्राप्त होगा। प्रदक्षिण वहुत बड़ा नहीं किन्तु ६ मील के लगभग है। श्रीॐकारनाथजी को—(मांधाता) भी कहते हैं किसी किसी के मत से माहिष्मती नगरी जहाँ कि मण्डन मिश्रजी रहते थे, वह यही है। पर इसमें कोई प्रबल प्रमाण हमको उपलब्ध नहीं। जो कुछ हो यह एक प्राचीन महत्त्वशाली स्थान अवश्य है। इस तीर्थ की बनावट जैसी है वैसी अन्य दूसरे तीर्थ की देखने में नहीं आती। यह एक टापू (द्वीप) कहा जाय तो अनुचित नहीं। श्रीॐकारनाथ पर्वत के चारों ओर नर्मदा और कवेरीनदी का घेरा है। ये दोनों नदियाँ ऐसी मालूम होतीं है

कि मानों ॐकार पर्वत धौत वस्त्र (धोती) पहने है । अथवा कोई सुगन्धित फूलों का हार पहिन रक्खा हो। दोनों की धवलधार मोतियों की माला सदृश श्रीॐकारजी के गले में पड़ी है।

हरे भरे वृक्ष हरे रंग की पोशाक का दृश्य पैदा करते हैं। बीच में श्रीॐकारनाथजी का मन्दिर और भिलारे राजा के मकानादि दूर से ऐसे ज्ञात होते हैं कि मानो पर्वतराज ने कोई शुक्ल आभूषण धारण किये हों। अस्तु—जब यात्रीगण ॐकारपर्वत प्रदक्षिणा करना आरम्भ करेंगे तब उन्हें तरह तरह के दृश्य वन और नदी तट की रमणीयता के मिलेंगे। कहीं कहीं बालू का एक सुन्दर मैदान बिछा हुआ दिखाई देगा। तरह तरह के जीव जन्तु पक्षी-गण अपने अपने आनन्द में मग्न क्रीड़ा करते दृष्टिगोचर होंगे। काले मुख के बन्दर भी कितने ही स्थानों में दृष्टिगोचर होंगे।

एक मील डेढ़ मील चलने पर श्रीनर्मदा और श्रीकावेरीजी का सङ्गम मिलेगा यह क्या ही रम्य स्थान है। चारों तरफ पार्वत्य अनुपम शोभा के मध्य एक ओर से श्रीनर्मदाजी और दूसरी ओर से श्रीकावेरीजी दौड़ती हुई अत्युत्कण्ठित सी एक दूसरी को गले लगातीं हैं। पहाड़ों के मध्य में बड़े पाषाणों से ठोकर लेती उछलती हुईं दोनों की धवलधारायें जब मिलती हैं उस समय देखते ही बनता है। तटों पर जल के समीप छोटे मोटे पत्थर बहुत हैं। यहाँ मनुष्यों का वास न होने से एकदम स्वच्छता रहती है। इस सङ्गम में इच्छा के अनुसार स्नान कर परम पुरुष अनुपमलीलानायक का ध्यान और भजन करना चाहिये। तद-नन्तर भगवान् को अर्पण कर कुछ खा पी लेना चाहिये। थोड़ी देर विश्राम कर यहाँ का आनन्द लेकर फिर कावेरी के किनारे किनारे परिक्रमा आरम्भ करना चाहिये। सङ्गम के पास एक साधु का कुटीर भी बना है। परिक्रमा करने में शौचादि क्रियायें,

थूकना, लघुशंका, आदि कर्म परिक्रमा से बांये तरफ करना चाहिये। और पुनः पवित्र हो परिक्रमा करना उचित है। बाँयें तरफ कावेरी की शोभा और दाहिने हाथ ॐकार पर्वत का आनन्द लेते हुए एक ऐसे मुक़ाम पर पहुँचेंगे जहाँ उस पार कुछ मकान मन्दिर दिखाई पड़ेंगे। यह जैनियों का तीर्थ है जिसे "सिद्धवर-कूट" तीर्थ कहते हैं। यहाँ जैनी बहुत जाते हैं। बस यहीं से आपको दोनों धारायें अलग होती हुई दिखाई पड़ेंगी, और आगे चलकर फिर सङ्गम होता है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह स्थान बड़ा ही सुरम्य है। यहाँ कुछ भ्रामक मार्ग है यदि कोई जानकार आदमी साथ है तब तो कोई बात नहीं; अन्यथा परि-क्रमा का मार्ग किसी से पूँछ लेना चाहिये। जहाँ तहाँ आदमी मिलते रहते हैं। शिवरात्रि के समय तो कोई बात ही नहीं, जनता बहुत परिक्रमा करती है। यद्यपि चूना से पुते हुये सफेद पत्थर मार्ग में लगे हुये हैं; पर उसी तरह पहाड़ के ऊपरी मार्ग को भी लगे हुये हैं अतः भ्रम पड़ सकता है। यहाँ से जब कुछ ऊँचाई पर यात्री लोग पहुँच जाँयगे; तब एक मैदान सा मिलेगा, जिससे चारों ओर को मार्ग जाते हैं, यहाँ भी अनजान आदमी को पूँछ लेना चाहिये। यदि कोई न मिले तो बांये हाथ नर्मदाजी के तरफ चलने से वही परिक्रमा का मार्ग है। केवल एक फलाङ्ग पर ही कुछ मन्दिर बने हुये जो कि बहुत प्राचीन और दर्शनीय हैं मिलेंगे। यहाँ शान्ति और रमणीयता का सदैव वास रहता है। इन मन्दिरों में जानने वाले लोग जान सकते हैं। (१) ऋण-मुक्तेश्वरजी का (२) दूसरा गौरीसोमनाथजी का यह बड़ा विशाल शिवलिङ्ग है (३) सिद्धिनाथ (जूना ॐकारनाथ) यानी प्राचीन ॐकारेश्वरजी का मन्दिर (४) मल्लिकार्जुन की मूर्ति और (५) द्वादशभुजी देवीजी की मूर्ति एवं मन्दिर हैं। पर

आदमी कोई भी यहाँ नहीं मिलता, संयोगवश कोई मिले तो वह बात अलग है। यह स्थान बहुत ही पवित्र ज्ञात होता है किसी समय इसमें लाखों रुपये लगाये गये होंगे। आज वह एक भयानक श्मशान के रूप में है। यहाँ से दर्शन आदि का आनन्द ले, मार्ग जो नीचे की तरफ (नर्मदा की तरफ जाता) है उससे नीचे संभाल कर उतरना चाहिये। बस अब नर्मदा के किनारे का आनन्द लूटते ठीक श्रीॐकारनाथजी के मन्दिर ही में यात्रीगण पहुँच जाँयगे। बीच में नर्मदा के किनारे दो एक साधुओं के सुरम्य स्थान हैं। मन्दिर में पहुँच जहाँ से परिक्रमा उठाया था वहाँ समाप्त कर; श्रीॐकारनाथजी का दर्शन, प्रणाम करते हुये अपने निवास स्थान पर आ जाना चाहिये। और भोजन विश्राम करना चाहिये यह दूसरे दिन का कृत्य समाप्त हुआ।

तीसरे दिन प्रभात स्नान श्रीनर्मदाजी में कर श्रीॐकारनाथजी का दर्शन पूजन करना चाहिये। अपनी शक्ति श्रद्धानुसार यदि कुछ पुण्यकृत्य करने हों तो करें; और भोजन, विश्राम आदि से निवृत्त हो यदि इच्छा हो तो एक दिन और निवास कर आनन्द लेवें। अन्यथा चलना चाहिये। श्रीॐकारनाथजी की यात्रा समाप्त हो गई।

५—अथ श्रीकेदारनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का प्रादुर्भाव

श्रीसूतजी बोले कि हे महर्षियो ! श्रीब्रह्माजी के पुत्र स्वायम्भू मनु और मनु के महाप्रतापी पुत्र प्रियव्रत नाम के हुये ॥ १ ॥ प्रियव्रतजी के सात पुत्र हुये, प्रियव्रतजी ने अपने पुत्रों के लिये स्वयं सुमेरु पर्वत के चारो तरफ बार बार रथ घुमाया ॥ २ ॥ सात प्रदक्षिणा करके उन्होंने सात ही द्वीप बनाये; और द्वीपों की

संख्या से ही सात समुद्र उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ उन्होंने अपने सातों पुत्रों में प्रत्येक को एक एक द्वीप का राज्य दिया ॥ ४ ॥ उत्तम वंश विस्तार कर राजा ने मुनियों की गति लाभ की (मुक्त हो गये)। उनके जेष्ठ पुत्र अग्नीध्रजी ने जम्बूद्वीप में सुखपूर्वक राज्य किया, और उनके पुत्र नाभि नामक बड़े ही लोक प्रिय हुये ॥ ५ ॥ ६ ॥ महाराज नाभि ने भी अपने पिता के तरह ही राज्य का पालन किया, उनके पुत्र ऋषभ आदि हुये ॥७॥ महात्मा ऋषभ के सौ पुत्र हुये, उन सब पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ भरत नाम के हुये ॥ ८ ॥ और बड़े विराग युक्त नव योगेश्वर हुये; इन्हीं योगेश्वरों ने महाराज जनकजी को ज्ञानोपदेश किया ॥ ९ ॥ और एकाशीति ८१ कर्म-मार्ग में परायण हो गये। और क्षत्रियोचित कर्म करके मोक्षभागी हुये ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषयो! बाकी बचे हुये पुत्रों के लिये ऋषभदेव ने नव पुत्रों के लिये ९ खण्ड बनाये ॥ ११ ॥ उन सबों में सर्वोत्तम इस भरतखण्ड में अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्य दिया, तभी से उनके नाम से यह "भारतखण्ड" नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १२ ॥ सभी खण्डों में यह भारतखण्ड ही सर्वो-त्तम है; क्योंकि यह सब प्रकार से सर्वकाल में सुख देने वाला है, देवता लोग भी इसमें जन्म लेने की इच्छा करते हैं ॥ १३ ॥ सभी खण्डों में भगवान् विष्णु ने लोक की रक्षा के निमित्त अवतार लिये हैं ॥ १४ ॥ परन्तु इस भरतखण्ड के बदर्याश्रम (बदरी नारायण) में भगवान् विष्णु नरनारायण रूप से स्थित हुये ॥ १५ ॥ और लोक की हितेच्छा से भगवान् वहाँ सदैव तप करते हैं। वहीं (समीप ही में) केदार नामक एक हिमालय का शृंग (शिखर) है ॥ १६ ॥ श्रीनरनारायण जहाँ तप करते थे वहीं उनकी प्रार्थनावश उनके पार्थिवपूजन के लिये सदैव शिवजी आया करते थे। हे ऋषयो! भगवान् शिवजी भक्त की भक्ति के

आधीन हैं। इस लिये सदैव उनको आना पड़ता था ॥ १७ ॥ किसी समय श्रीशङ्करजी प्रसन्न होकर बोले, कि हे नरनारायण ! आप ने बहुत अच्छा किया। जगत्पूज्य आप लोगों से हम पूजित हुये। अब यह बताओ कि आप लोग तो आप्तकाम हो (आप लोगों को सब कुछ सर्व समय में प्राप्त ही है) सर्वश्रेष्ठ आप लोगों की तपस्या का लोक में क्या कार्य है; अर्थात् किस कार्य के लिये आप लोगों ने तप किया ? यद्यपि इस प्रकार से है, तथापि आप लोगों ने हमारा पूजन किया है, इस लिये जो आप का कार्य हो वर मांगो ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ देवदेव श्रीशंकरजी ने जब इस प्रकार कहा तब लोक हित की कामना से श्रीनरनारायणजी ने कहा ॥ २१ ॥ हे देवेश यदि आप प्रसन्न हैं और हमको वर देना चाहते हैं तो हे प्रभो ! स्वयं अपने स्वरूप से पूजा के लिये यहाँ विराजमान हो जाइये । २२ ॥ जब ऐसा नरनारायण देव ने कहा तब उसी केदार नामक हिमालय के शिखर पर श्रीशंकरजी ज्योतिःस्वरूप से स्वयं स्थित हो गये ॥ २३ ॥ लोक के उपकार और भक्तों के दर्शन के लिये, सर्वदुःख और भय के दूर करने वाले, श्रीनरनारायण से पूजित हो; श्रीकेदारेश्वर इस नाम से श्रीशंकरजी वहाँ स्थित हुये। सब देवता और सब महर्षिगण सदैव उनका पूजन करते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशंकरजी के पूजन से बदरीवनवासी सब पवित्र हो गये, श्रीकेदारेश्वरजी का नाम लेने ही से लोग पवित्र होते हैं ॥ २६ ॥ उस दिन से लेकर श्रीकेदारेश्वरजी का भक्ति से जो पूजन करता है उसको दुःख स्वप्न में भी दुर्लभ है ॥२६॥ और वहाँ का हरि, भगवान् और हर, शंकरजी के रूप से युक्त भगवत्प्रिय वलय (कंकण) को जो धारण करता है ॥ २८ ॥ उसका ही स्वरूप देखकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। जो बदरीवन गया है उसे जीवनमुक्त समझना चाहिये ॥ २९ ॥

श्रीनरनारायण और श्रीकेदारेश्वरजी का स्वरूप देख कर वह मुक्तिभागी है; इसमें संदेह नहीं है ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि हे महर्षियो! आप लोगों ने जो पूँछा वह हमने कहा इस कथा को सुनकर मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है; इसमें कोई विचार की आवश्यकता नहीं है ॥ ३१ ॥ अब इसके अनन्तर श्रीभीमशंकरजी का महात्म्य कहेंगे ॥ ३१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ज्ञानसंहितायां केदारेश्वरप्रादुर्भाववर्णनं नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

५—श्रीकेदारनाथज्योतिर्लिङ्ग यात्रा का वर्णन

सज्जनो !

श्रीकेदारनाथजी पञ्चम ज्योतिर्लिङ्ग का प्रादुर्भाव जिस प्रकार हुआ वह आप लोगों को बताया गया अब वहाँ की यात्रा, यद्यपि उत्तराखण्ड की सम्पूर्ण यात्रा के साथ भारततीर्थयात्रा में विशेष रूप से वर्णित हुई है, पर केवल श्रीकेदारनाथजी तथा श्रीबद्रीनाथजी के साथ यात्रा करने वाले यात्रियों के लिये निम्नलिखित मार्ग का वर्णन करते हैं।

हरद्वार से केदारनाथजी १४९ मील और श्रीकेदारजी से बद्रीनाथ १०१ मील हैं।

२२—देवप्रयाग

(हरद्वार से दूरी ५८ मील है)

हरद्वार से देवप्रयाग तक का मार्ग यमुनोत्री गंगोत्रीजी यात्रा नं० १ (क) में वर्णन किया जा चुका है। अब देवप्रयाग से आगे का मार्ग लिखते हैं।

२३—रानीबाग

(देवप्रयाग से ८॥ मील और हरद्वार से ६६॥ मील है)

देवप्रयाग से चलकर मार्ग में ३ मील पर विद्याकोटी जिसमें प्राचीन मन्दिर है, और विद्याकोटी से ३ मील पर सीताकोटी है जिसका मंदिर भग्न हो गया है। एक प्याऊ बैठती हैं। सीताकोटी से २॥ मील पर रानीबाग है। स्थान सुन्दर है। किसी समय यहाँ बाग था।

२४—कोल्टा

(रानीबाग से १॥ मील और हरद्वार से ६८ मील है)

यहाँ एक इन्स्पेक्शन बंगला है।

२५—रामपुर

(कोल्टा से २ मील और हरद्वार से ७० मील है)

चट्टी अच्छी है। झरने बड़े सुन्दर झरते हैं। यहाँ से दो मील ऊपर एक पाठशाला है।

२६—विल्वकेदार

(रामपुर से ४ मील और हरद्वार से ७४ मील है)

यहाँ भिल्लेश्वर महादेवजी है। इनमें विल्वपत्र चढ़ाने का महत्त्व है। अर्जुन के साथ भिल्लरूप से श्रीशंकरजी ने इसी स्थान पर युद्ध किया था। मन्दिर प्राचीन और भिल्लगंगा का संगम है। सामने इन्द्रकील पर्वत है। खाण्डव नदी खण्ड प्रयाग में अलकनन्दा से मिलती है। रामपुर और विल्वकेदार के बीच में एक अरकणी चट्टी है। अरकणी में आम्र का बाग हैं और प्याऊ भी बैठती है।

२७—श्रीनगर

(विल्वकेदार से ३ मील और हरद्वार से ७७ मील है)

यहाँ कमलेश्वरमहादेव, और पुराने श्रीनगर में शंकरमठ और अश्वतीर्थ है। १ मील अन्तर पर नया श्रीनगर भी बसा है। यहाँ धर्मशाला और सदाव्रत है, धर्मशाला में श्रीसत्यनारायणजी का मन्दिर है। यहाँ हाई स्कूल, अस्पताल, पोष्ट, तार, संस्कृतपाठशाला, कन्या-पाठशाला और अच्छा बाजार है। यह गढ़वाल का केन्द्र है। नारदजी को मोह तथा वन्दर का मुख यहीं हुआ था।

२८—सुक्रता

(श्रीनगर से ५ मील और हरद्वार से ८२ मील है)

मार्ग सम और आमों की छाया दार है। गंगा अलकनन्दा पास ही हैं।

२९—भट्टीसेरा

(सुक्रता से २॥ मील और हरद्वार से ८४॥ मील है)

यहाँ से आगे १ मील की चढ़ाई है। यहाँ एक धर्मशाला और सदाव्रत है। प्याऊ भी रहती है। धर्मशाला के पास जलाशय का मार्ग खराब है। गिरने का भय है। यहाँ मेरे गिरने पर एक पत्थर की दरार में पैर फँस जाने से प्रभु ने जीवन पुनः प्रदान किया था।

३०—छांतीखाल

(भट्टीसेरा से १ मील और हरद्वार से ८५॥ मील है)

यहाँ एक बंगला है।

३१—खांकरा

(छांतीखाल से २॥ मील और हरद्वार से ८८ मील है)

उतार का मार्ग है। नदी तट में स्थान अच्छा है।

३२—नरकोटा

(खांकरा से २॥ मील और हरद्वार से ६०॥ मील है)

डेढ़ मील की चढ़ाई तथा एक मील के उतार पर है। एक मील की चढ़ाई चढ़कर पंच भाइयों की धार है वहाँ प्याऊ आवश्यक है। स्थान अच्छा है।

३३—गुलावराय

(नरकोटा से ३॥ मील और हरद्वार से ६४ मील है)

कुछ चढ़ाई एवं कुछ उतार का मार्ग है। स्थान अच्छा है।

३४—रुद्रप्रयाग

(गुलावराय से १ मील और हरद्वार से ६५ मील है)

यहाँ मन्दाकिनी (रुद्रगंगा) और अलकनन्दाजी का संगम ऐसा मनोहर है कि देखने वाला ही उस सुख का अनुभव कर सकता है। ऊँचाई पर रुद्र प्रयाग है नीचे बड़े वेग से दोनों धारायें मिलती हैं। यह एक बड़ा तीर्थ है, यहाँ स्नान, ध्यान, दान, पिण्ड आदि सब कृत्य होते हैं। अलकनन्दा का पुल पार कर रुद्रप्रयाग जाते हैं। यहाँ श्रीरुद्रनाथजी का मन्दिर है। नीचे सुन्दर घाट बना हुआ है। यहाँ धर्मशाला और सदाव्रत भी है। धर्मशाला से नदी का दृश्य बैठे बैठे देख पड़ता है। यहाँ पोष्ट, तार भी है। यहाँ से एक मार्ग ५४ मील श्रीकेदारजी को गया है, और दूसरा श्रीबदरीनाथजी जाता है। यात्री केवल श्रीकेदारनाथजी से तथा श्रीबद्रीनाथजी होकर लौटने में स्वतन्त्र है।

३५—छतोली

(रुद्रप्रयाग से ५ मील और हरद्वार से १०० मील है)

स्थान अच्छा है। आगे एक मील पर मठ चट्टी है। मार्गसम है।

३६—रामपुर

(छतोली से २ मील और हरद्वार से १०२ मील है)

मार्ग सम है। स्थान ठीक है। यहाँ से ढाई मील पर बंगला है।

३७—अगस्तमुनि

(रामपुर से ४॥ मील और हरद्वार से १०६॥ मील है)

यहाँ अगस्तजी का मन्दिर है। मंदाकिनी गंगा कुछ दूर हैं। यहाँ धर्मशाला, सदाव्रत, और औषधालय है। स्थान अच्छा है। यहाँ से आध मील पर छोटानारायण का मन्दिर है जिसमें सुन्दर मूर्ति है और सामने रुद्राक्ष के वृक्ष हैं।

३८—सौड़ी

(अगस्तमुनि से २ मील और हरद्वार से १०८॥ मील है)

चट्टी ठीक है।

३६—चन्द्रापुरी

(सौड़ी से २ मील और हरद्वार से ११०॥ मील है)

चट्टी अच्छी है। यहाँ चन्द्रशेखर महादेव तथा दुर्गाजी के मन्दिर हैं। मंदाकिनी और चन्द्रा का संगम भी है। यहाँ झूला द्वारा उतरना होता है। अन्नादि का भाव अच्छा है।

४०—भीरी

(चन्द्रापुरी से २॥ मील और हरद्वार से ११३ मील है)

मंदाकिनी का पुल पार करके भीमजी के दर्शन हैं। टिहरी तथा बूढ़ा केदार से एक पगडंडी यहाँ आ मिलती है।

४१—कुण्ड

(भीरी से ३॥ मील और हरद्वार से ११६॥ मील है)

यहाँ से कुछ ठंढ मालूम होने लगती है। यहाँ से आगे डेढ़ मील की चढ़ाई है।

४२—गुप्तकाशी

(कुण्ड से २॥ मील और हरद्वार से ११९ मील है)

वर्णन हो चुका है।

४३—नालाचट्टी

(गुप्तकाशी से १॥ मील और हरद्वार से १२०॥ मील है)

यहाँ से एक मार्ग बदरीनारायणजी को जाता है; और दूसरा श्रीकेदारनाथजी को नारायणकोटी (भेत्ता) होता हुआ जाता है। इस यात्रा में त्रियुगीनारायण होकर केदारजी जाना चाहिये।

४३—नालाचट्टी

(हरद्वार से १२०॥ मील है)

यहाँ से नारायणकोटी २ मील है आगे का वर्णन तथा चट्टियों का विवरण यात्रा नं० १ (क) में हो चुका है।

५४—पुरीकेदारनाथ

(नालाचट्टी से २८॥ मील और हरद्वार से १४९ मील है)

नाला से ११ चट्टी तय करके श्रीकेदारनाथजी पहुँचते हैं नाला से केदारनाथजी तक २८॥ की दूरी है। सब मिलाकर हरद्वार से श्रीकेदारनाथजी १४९ मील हैं। पुरी केदारनाथजी से लौटते २३ मील नाला चट्टी तक इस यात्रा के यात्रियों को उसी मार्ग से लौटना पड़ेगा। नाला से ऊखीमठ ३ मील है। यात्रा नं० १ (क) के यात्री गुप्तकाशी होकर ऊखीमठ जाते हैं। क्योंकि उनको गुप्तकाशी मार्ग में नहीं पड़ती है। ऊखीमठ से आगे का मार्ग बद्रीनाथ तक चमोली होकर यात्रा नं० १ (क) में वर्णन किया गया है। श्रीकेदारनाथजी से श्रीबदरीश १०१ मील हैं यह भी लिखा गया है। इस तरह इस नं० २ (ख) यात्रा में भी पंचकेदार और पंचबद्री हो जाते हैं।

अथ षष्ठज्योतिर्लिङ्ग श्रीभीमशंकरजी का प्रादुर्भाव

भाषार्थ—श्रीसूतजी बोले, कि हे मुनीश्वरो ! समस्त कल्याण गुण के आधार भगवान् श्रीशंकरजी लोकहितार्थ साक्षात् जिस कारण कामरूप देश में अवतीर्ण हुये, वह कहते हैं। भीम नाम का राक्षस बड़ा बलवान् लोक के नाश करने में और सर्वप्राणियों को दुःख देने और धर्मनाश करने में तत्पर हो गया। वह कर्कटी राक्षसी और कुम्भकर्ण से उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ लोक को भय देने वाले कुम्भकर्ण को श्रीरामचन्द्रजी ने जब मार दिया, तब सह्याद्रि में अपनी माता के साथ वह रहता था। वह बाल्यावस्था में ही था कि एक बार उसने अपनी माता कर्कटी से पूँछा कि हमारा पिता कौन है और तुम अकेली कैसे रहती हो ? यह सुन राक्षसी बोली कि हे पुत्र ! सुनो हम उसे कहती हैं। तुम्हारा पिता रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ वह कदाचित् दैवयोग से यहाँ आया, और हमारे साथ भोग किया, परन्तु अपने बड़े भाई रावण के साथ वह मारा गया ॥ ८ ॥ हम ने लंका नहीं देखी; यहीं पर निवास करती हैं। हमारे पिता का नाम कर्कट और माता का नाम पुस्कसी है ॥ ९ ॥ हमारे भर्ता (पति) का नाम विराध है, जब उसे श्रीरामचन्द्रजी ने मार दिया तब से मैं अपने माता पिता के पास रहती थी ॥ १० ॥ निष्पाप बड़े तपस्वी सुतीक्ष्ण महर्षि के भक्षणार्थ, हमारे माता पिता गये, तब महर्षि ने क्रोधयुक्त होकर हमारे परमप्रिय माता पिता को भस्म कर दिया ॥ ११ ॥ १२ ॥ तब से मैं अकेली होकर इस पर्वत पर रहने लगी, इसी अवसर में कुम्भकर्ण आया और हमारा संग किया, हमको यहीं छोड़ कर वह चला गया। तदनन्तर कुछ दिन में तुम्हारी उत्पत्ति हुई ॥ १३ ॥ १४ ॥ तुझे आधार मान मैं समय बिताती हूँ। इस प्रकार अपनी माता का वचन सुन बड़ा पराक्रमी

भीम, क्रुद्ध होकर यह विचार करने लगा, कि हरि (भगवान्) ने मेरे पिता, और मातामह (नाना) और विराध राक्षस को मार हमको बहुत दुःख दिया, यदि हम अपने पिता के पुत्र होंगे तो हरि को अवश्य पीड़न करेंगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ऐसा निश्चय कर ब्रह्मा को लक्ष्य करके कई हज़ार वर्ष भीम ने भयंकर तप किया ॥१८॥ ऊपर को हाथ उठा एक पैर पर खड़ा हो सूर्य में दृष्टि को लगा कर मन से ध्यानपरायण हो वह तप करने लगा॥१९॥तब उसके मस्तक से बड़ा भयंकर तेज निकला जिससे देवगण दग्ध होने लगे और वे ब्रह्मा की शरण गये ॥ २० ॥ और बोले कि हे ब्रह्मदेव ! राक्षस का तेज लोकों को पीड़ा देने में उद्यत है; इसलिये हे पितामह ! वह दुष्ट जो कुछ मांगता हो उसे देकर हम लोगों की रक्षा करो ॥ ॥ २१ ॥ इस प्रकार का वचन सुन श्रीब्रह्माजी उस दुरात्मा भीम को बरदान देने के लिये गये ॥ २२ ॥ और उसके समीप अपने हंसवाहन से युक्त हो गये, और बोले कि हे भीम ! क्या तेरे मन में है, वर माँग हम तुझसे प्रसन्न हैं ॥ २३ ॥ राक्षस बोला, कि हे कमलासन ! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं, तो मुझे 'अतुल बल दीजिये' ॥ २४ ॥ श्रीब्रह्माजी उसे वरदान देकर अपने लोक को लौट गये, और राक्षस बड़ा बलवान् हो गया, वह अपनी माता को प्रणाम कर बोला कि हे मातः ! तुम देखो अब हम देवतावोंका प्रलय करते हैं। ऐसा कहकर उस पराक्रमी भीमराक्षस ने प्रथम कामरूप देश के राजा को बाँध कर उसने बहुत ताड़न किया। और राजा का सर्वस्व हाथी, घोड़े, चमर, छत्र और राज्य समस्त सामग्री छीन लिया ॥ २५ ॥ २६ ॥२७॥ और हे मुनीश्वरो ! उसका समस्त राज्य ग्रहण कर लिया। राजा बड़ा पवित्र, श्रेष्ठ, धर्मप्रिय और हरिभक्त था। पर उस देवशत्रु ने उसे कारागार में डाल दिया। तब एकान्त में वह पार्थिव पूजन करने लगा। और

श्रीशंकरजी को प्रसन्न करने के लिये श्रीशिवजी का भजन करने लगा। वह श्रीशंकरजी का मानसध्यान से स्नानादि करवा पार्थिव-पूजन विधान से शिवपूजन और उनका ध्यान विधिपूर्वक करने लगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो! उस राक्षस ने सम्पूर्ण पृथिवी को अपने वश में कर लिया और वैदिकधर्म, शास्त्रधर्म, स्मृतिधर्म समस्तप्राचीनधर्मों को लुप्त कर स्वयं वह भोग करता था, और देवता, ऋषियों को उसने अत्यन्त सताया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तब वे अत्यन्त दुःखी होकर श्रीशंकरजी की शरण में गये, और सर्वलोक को सुख देने वाले श्रीशंकरजी की अनेक भांति से स्तुति कर प्रसन्न किया। महाकोशी के तट में जब श्रीशंकरजी स्तुत हुये तब देवतावों से बोले ॥३४॥३५॥ श्रीशंकरजी बोले कि हे देवगण! हम प्रसन्न हैं, वर माँगों, आपलोगों का क्या कार्य कर्तव्य है? वह कहो, देवगणों ने कहा कि हे प्रभो! आप सब जानते हैं; कोई बात ऐसी नहीं है जो आपको ज्ञात न हो ॥ ३६ ॥ तथापि हमारी प्रार्थना सुनिये, भीमनाम का राक्षस देवतावों को अत्यन्त पीड़ा देता है; अतः आप हमलोगों के ऊपर कृपा कर उस दुष्ट को बहुत शीघ्र ही मारिये, जब ऐसी प्रार्थना श्रीशङ्करजी से देवतावों ने किया तब उन्होंने स्वीकार किया, और बोले ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ कि देवगण! कामरूपदेश का राजा भी हमारी नित्य ही भक्ति करता, इसी अवसर पर राजा पार्थिवशिवमूर्ति के सामने अत्यन्त ध्यान में मग्न था। कुछ राक्षसों ने जाकर भीमराक्षस से कहा, कि हे महाराज! राजा आपके लिये अभिचार (मारण) कर रहा है, आपकी जैसी इच्छा हो सो करो ॥३९ ॥ ४० ॥ ४१॥ ऐसा सुनकर भीमराक्षस राजा को मारने की इच्छा से तलवार ले राजा के पास पहुँचा ॥ ४२ ॥ उसने राजा से पूंछा कि तुम क्या करते हो? राजा बड़ा सत्यवादी था, उसका वचन सुनकर

सत्य ही बोला क्यों कि जो होना होगा वही होगा, वह बोला कि इस पार्थिवमूर्ति में श्रीशंकरजी स्थित हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हम देवदेव श्रीशंकरजी का भजन करते हैं, जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो, ऐसा राजा का वचन सुन भीम बोला ॥ ४५ ॥ कि तुम्हारे शंकर हमको ज्ञात हैं, हमारे चचा रावण ने उन्हें नौकर की भांति रक्खा था ॥ उन्हीं शंकर के बल से तुम हमको जीतना चाहते हो तो तुमने सब जीत लिया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जब तक तुम्हारे पालन करने शंकर को हमने नहीं देखा, तब तक तुम स्वामी मान कर सेवा करो अनन्तर नहीं कर सकोगे ॥ इसलिये यह शिवरूप को दूर करो, नहीं, अपने स्वामी को और मुझे देखोगे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उस राक्षस का यह वचन सुन राजा बोला कि हम तो इतने अधम हैं कि शंकर का त्याग भी कर सकते हैं; पर सर्वोत्कृष्ट स्वामी हमको कदाचित् भी नहीं छोड़ते हैं। तब राक्षस हँस कर बोला, कि हम और तुम्हारा स्वामी युद्ध करें राजा ने यह सुन कहा कि हम नहीं कह सकते ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तुम कर सकते हो शक्तिमान् हो, तब वह राजा को डाटता हुआ सेना लेकर अपनी तलवार का प्रहार पार्थिवशिवमूर्ति पर करने लगा ॥

सूतजी बोले कि हे मुनियों ! तलवार जब तक मूर्ति को स्पर्श भी नहीं कर पाई थी कि श्रीशंकरजी उस पार्थिव मूर्ति में प्रकट हो गये और बोले कि देख हम भीमेश्वर हैं, राजा की रक्षा के लिये प्रकट होते हैं ॥५३॥५४॥५५॥ श्रीशंकरजी बोले कि मेरा यह व्रत है. कि राजा रक्षा करने योग्य है, इसलिये भक्तों को सुख देने वाला हमारा बल तू शीघ्र ही देख ॥५६॥ ऐसा कह श्रीशंकरजी ने उसकी तलवार को अपने पिनाक धनुष से सौखण्ड कर दिये तब उस दुष्ट ने एक त्रिशूल चलाया ॥५७॥ तब भगवान् श्रीशिवजी ने त्रिशूल को भी सौखण्ड कर दिये, फिर उसने एक

शक्ति चलाई, उसको भी चूर्ण कर दिया ॥५८॥ अर्थात् जो-जो अस्त्र उस दुष्ट भीमराक्षस ने चलाया, उस अस्त्र को श्रीशंकरजी ने अपने त्रिशूल से तिलसदृश चूर्ण कर दिया ॥५९॥ इसके अनन्तर शिवगणों का और राक्षसों का परस्पर इस प्रकार का घोर युद्ध होने लगा जो देखनेवालों को भय उत्पन्न करनेवाला था ॥६०॥ इसी अवसर पर श्रीनारदजी आये और दुःख हरण करने-वाले शिवजी से बोले कि हे प्रभो ! मेरी धृष्ठता को क्षमा करियेगा, मैं आप से प्रार्थना करता हूँ, कि तृण में कुठार अपनी शक्ति का परिचय क्यों देवे, इसलिये शीघ्र ही इसका वध कीजिये। जब श्रीशंकरजी इस प्रकार नारदजी द्वारा प्रार्थित हुये, तब समस्त राक्षसगणों को अपने "हुँकार" रूपी अस्त्र से भस्म कर दिया, और भीम की भस्म कौन है इसका किसी को कुछ पता तक नहीं लग सका ॥६१॥६२॥६३॥ सहित परिवार के वह भीम-राक्षस इस प्रकार भस्म हो गया कि उसका नाम भी कहीं नहीं सुनाई दिया, तब हे मुनीश्वरो ! श्रीशङ्करजी का क्रोध शांति को नहीं प्राप्त हुआ ॥ ६४ ॥ क्रोध की ज्वाला फुफुकार से निकलती हुई एक वन से दूसरे वन को भस्म करने लगी, मृतराक्षसों की भस्म उस वन में व्याप्त हो गई ॥६५॥ उस भस्म से नानाप्रकार की औषधियाँ नानाप्रकार के कार्य करने वाली उत्पन्न हो गईं; तब देवतावों ने आकर बड़ी प्रार्थना की तब श्रीशङ्करजी शांति को प्राप्त हुये ॥६६॥ देवता लोग बोले कि हे स्वामिन् ! आप लोक को सुख देने के निमित्त यहाँ स्थित हो जाइये; यह देश भी कुत्सित है और औषधी भी लोक को दुःख देने वाली ही होंगी ॥६७॥ आपका दर्शन पाकर सब प्रकार का कल्याण होगा, अब आप 'भीमशङ्कर' इस नाम से सर्ववस्तु की सिद्धि देनेवाले होंगे ॥ ६८ ॥ देवतावों के इस प्रकार प्रार्थना करने

पर श्रीशङ्करजी जहाँ प्रकट हुये थे उसी स्थान पर स्थित हो गये ॥ ६९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे भीमशङ्करमाहात्म्य, प्रादुर्भाववर्णनं नाम ज्ञानसंहितायां अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

'अथ छठां ज्योतिर्लिङ्गश्रीभीमशङ्करजी का वर्णन'

श्रीभीमशङ्कर नामक ज्योतिर्लिङ्ग 'पूना' से ७६ छियत्तर मील की दूरी पर एक विकट जङ्गल में विराजमान है। पूना से मोटर आदि सवारियाँ जाती हैं। पर अकेले दुकेले यात्रियों को खर्चा अधिक पड़ता है। शिवरात्रि के समय खर्चे की कमी और सवारी की सुविधा अधिक हो जाती है। सीधी सड़क भीमशङ्करजी तक चली गई है। श्रीभीमशङ्करजी जाने के लिये प्रत्येक प्रान्तीय लोगों को जी० आई० पी० रेलवे द्वारा पूना तथा बम्बई पहुँचना चाहिये। उत्तरीयपञ्जाब आदि प्रान्तीय लोगों को बी० बी० ऐण्ड० सी० आई० रेलवे से बम्बई, और दक्षिणीय लोगों को पूना से जाने में अधिक सुविधा होगी। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय लोगों के मार्ग उनके निवासस्थानों से भिन्न-भिन्न होंगे, यह यात्री स्वयं निर्णय कर लेंगे। बम्बई से यह यात्रा कम खर्चे में आराम के साथ हो जाती है। बम्बई के विक्टोरियाटर्मिनिस स्टेशन से एक ऐसा टिकट दिया जाता है जो 'मंचर' का रहता है। टिकट का मूल्य १॥) रुपया है। मञ्चर एक कस्बा है, इसमें बाजार आदि हैं। यह मोटरों का जंकशन सा है। जब बम्बई से चलते हैं, तब एकदम रेलवे बुकिङ्ग आफिस से मंचर तक का टिकट लेना चाहिये। जी० आई० पी० रेल द्वारा "तलेगांव" स्टेशन तक गाड़ी से जाना पड़ता है। तलेगांव स्टेशन में उतरकर स्टेशन

पर ही जी० आई० पी० रेलवे की मोटर सर्विस मिलती है। उतरते ही मोटर पर बैठ जाइये, टिकट तो मंचर तक पास ही रहता है। लगभग दो-तीन घंटों में मंचर पहुँच जाते हैं। मंचर से तत्काल ही मोटर "आंवागांव" के लिये जाता है उसमें बैठ जाइये। किराया आंवागांव तक का लारी से आठ आना लगता है। आंवागांव में उतरकर किसी स्थान में ठहर अपना शरीरकार्य भोजनादि कर विश्राम करना चाहिये। ठहरने के बहुत स्थान मिल जाते हैं। यह एक ग्राम है, इसके किनारे एक छोटी सी नदी बहती है। आंवागांव से बण्डी (बैलगाड़ी) से भी जाते हैं; पर अकेले दुकेले यात्रियों को पैदल धर दबाना चाहिये। पर एक आदमी साथ ले लेना चाहिये। आदमी १) रुपये में दो तीन दिन के लिये मिल जाता है; पर खाना देना पड़ता है। खाद्यसामग्री साथ लेकर जाना चाहिये, क्योंकि वहाँ कुछ नहीं मिल सकता है। सब आवश्यक सामग्री आदमी को देकर चल देना चाहिये। महाराष्ट्र प्रान्त होने से कुली मरहठे ही मिलते हैं, पर संकेतादि से सब काम चल जाता है।

आँवागाँव से ७ या ८ क्रोश पर श्रीभीमशङ्करजी विराजमान हैं। एक मील जाने पर एक बड़ा सुन्दर आम्र का वृक्ष मार्ग में नदी तट पर मिलता है, वहाँ से नदी पार कर कुछ एक छोटी सी पहाड़ी की चढ़ाई करनी पड़ती है; आगे मार्ग सम आ जाता है। भोजनादि से निवृत्त हो दोपहर के अनन्तर चलने पर मार्ग में एक गाँव मिलता है, उसमें एक छोटासा मदर्सा है वहाँ ठहर जाना चाहिये। यह गाँव कोलभिल्लों का ही है, पर ये लोग यात्रियों को आराम पहुँचाते हैं, कोई कष्ट नहीं होता। प्रभात में चल देने से लगभग १० बजे श्रीभीमशङ्करजी की शरण में पहुँच जाते हैं। प्रभात में चलने से शाम को पहुँच जायँगे।

यद्यपि श्रीभीमशङ्करजी के समीप धर्मशालायें बनी हैं। पर धर्मशालायें शून्य पड़ी रहती हैं। एक धर्मशाला ऊपर मार्ग में जंगलआफिसर के वंगले के पास है; यहाँ एक कुंड भी है पर जलपेय नहीं रहता, यहीं श्रीभगवतीजी का मंदिर भी है। दर्शन बड़ा मनोहर है, अवश्य करना चाहिये। यह ऊपरी धर्मशाला शिवरात्रि के समय भरती है। वंगले में कोई रहता नहीं है; कभी-कभी साहब आता है। यहाँ ऐकान्तिक शांति का साम्राज्य है। रात में शेर भी चक्कर लगाते रहते हैं क्योंकि प्रभात में उनके बड़े-बड़े पञ्जों के चिह्न देख पड़ते हैं। कुछ ढालू मार्ग से नीचे जाने पर श्रीभीमशंकरजी का दर्शन सघन जंगल के भीतर होता है। मंदिर पेशवों के समय का बनाया बड़ा सुन्दर पत्थर का है, जो बहुत विशाल नहीं है। यहाँ पर मरहठे पण्डों की दो चार झोपड़ियाँ और आसपास कुछ कोलियों की झोपड़ियाँ हैं। यहाँ मंदिर के पास दो धर्मशालायें हैं। एक में कोठरियाँ बनी हैं, ताला कुंजी भी लगा सकते हैं; दूसरी मंदिर के सामने अहल्याबाई की बनवाई खुली धर्मशाला है। यात्रीगणों को यदि हवन अनुष्ठानादि करवाना होता है, तो यही धर्मशाला उपयुक्त है। पण्डों के यहां भी ठहर सकते हैं। अस्तु, कहीं पर ठहरकर स्नानादि कर भगवान्भीमशंकरजी का दर्शन प्रथम करना चाहिये। यहाँ शिवरात्रि आदि समयों को छोड़ जन सम्मर्द का लेश नहीं रहता। पूजा लेनेवाले पुजारी गुरु जाति (शुद्र) हैं। ये लोग गुरु या गरु कहलाते हैं। और जाति के क्रम में ये शूद्रान्तर्गत हैं, पर बहुत समय से इनका यही कार्य चला आता है पूजा या भोग सम्भवतः पण्डों में कोई करता है। मन्दिर के पीछे दो बावड़ी यानी छोटे-छोटे कूप और एककुण्ड है, जो स्नानादि करने का है। एक कूप का जल पीने

में आता है। मंदिर में जब घुसने लगते हैं तब दो नन्दीश्वरों की मूर्तियाँ हैं जिनमें एक प्राचीन और एक नवीन ज्ञात होती है, विराजमान हैं। इन दोनों मूर्तियों के ऊपर का मध्यभाग जिसे टूटे हुये बहुत काल हुआ ज्ञात होता है, पर किसी ने उद्धार नहीं कराया; इसमें धनीवर्ग को ध्यान देना चाहिये। मंदिर के भीतर जाने में दो चार सीढ़ियाँ उतरना पड़ता है; भीतर दश या बारह दीपक (दियट) जलते रहते हैं। करुणामूर्तिश्रीभीमशंकरजी का दर्शन पाते ही मन आनन्दसिन्धु में मग्न हो जाता है। मूर्ति प्राचीन ज्ञात होती है। लगभग हाथ, सवाहाथ ऊँची नातिस्थूल विराजमान है दर्शन पाकर यात्रीगण मार्गश्रम को एकदम भूल जाते हैं। दर्शन पूजन कर अपने स्थान पर लौट भोजन विश्राम करना चाहिये। सायंकाल पुनः दर्शन आरती का आनन्द लेना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातःकृत्य से निवृत्त हो शिवाभिषेकादि करना या कराना चाहिये। बन सके तो, अन्यब्राह्मण तो मिलेंगे नहीं, उन्हीं पण्डों को सन्तुष्ट करना चाहिये। दूसरे समय यहाँ का दृश्य जंगली देख लेना चाहिये। बड़ा ही शांतिमय दृश्य है। मंदिर के पास से एक मार्ग एकगाँव को गया है। मंदिर के पास की छोटी पहाड़ी को चढ़कर एक स्थान बड़ा ही सुरम्य है। जलाशय भी अच्छा है। कभी-कभी कोई महात्मा भी वहाँ रहते हैं। रम्यता का तो ऐकान्तिक वासस्थान ही समझना चाहिये। रात बिता, प्रभात कृत्य कर चल देना चाहिये। यदि इच्छा हो तो तीसरी रात भी बिता सकते हैं। यदि सामान अधिक हो तो आंवागांव में ही जाते समय छोड़ देना चाहिये, लौटते उसे लेकर अपनी यथेष्ट दिशा में गमन करना चाहिये। श्रीभीमशंकरजी की स्थिति एक जंगली निम्न स्थान में है जहां बहुत विशद अवकाश

नहीं है। आसपास के लोग इन्हें 'भीमाशंकरजी' कहते हैं। स्थान दर्शन बड़ा आनन्दप्रद है।

७—"वाराणस्यान्तु विश्वेशम्"

॥ अथ सप्तमज्योतिर्लिङ्गकाशीविश्वेश्वर प्रादुर्भाव ।

भाषार्थः—श्री सूतजी बोले, कि हे शौनकादि मुनीश्वरो! अब इसके अनन्तर महापापों का नाश करनेवाला श्रीकाशी-विश्वेश्वरजी का माहात्म्य हम कहेंगे, अतः हे श्रेष्ठ ऋषिगणो! आप लोग श्रवण करें॥ १॥ जो कुछ जगत् में वस्तुमात्र स्थावर जंगम जब नहीं था, तब परमपवित्र कल्याणरूप पंचक्रोशी (काशी की पंचक्रोशी परिक्रमा की भीतरी भूमि) तब थी॥ २॥ हे मुनिश्वरो! उसका कैसे निर्माण हुआ वह अब कहते हैं। सर्व-प्रथम निर्गुण, सत्य, ज्ञान, अनन्तस्वरूप, चिदानन्द, निर्विकार, सनातनस्वरूप ब्रह्मसत्ता थी। इसके अनन्तर प्रकृति, पुरुष से युक्त हुई॥ ३॥ ४॥ और दोनों विचार करने लगे कि हम दोनों को क्या करना चाहिये, हम किसके द्वारा बनाये गये, इस प्रकार का संशय जब प्रकृति और पुरुष को हुआ॥ ५॥ तब निर्गुण परब्रह्म परमात्मा से वाणी हुई; कि तुम लोग तप करो और उसके अनन्तर सृष्टि रचो॥ ६॥ तब प्रकृति और पुरुष बोले कि तप करने का कोई स्थल नहीं है; कहाँ हम लोग स्थिति हों और तप करें॥ ७॥ तब सब साधनों से परिपूर्ण सुन्दर नगर के सदृश तेज का सारभूत पंचकोशीरूप, निर्गुणब्रह्म से विराजित निर्मितकर प्रकृति और पुरुष के लिये भेजा गया, और वह अन्तरिक्ष में स्थित था, उसमें भगवान् विष्णु स्वयं स्थित हो गये॥ ८-९॥

और परब्रह्म की आज्ञा से भाँति-भाँति का बड़ा दारुणतप

किया, बहुतकाल इस तरह तपस्या कर सृष्टिरचना आरम्भ किया ॥ १० ॥ तप के करने से महात्माभगवान्‌विष्णु को परिश्रम हुआ, और उस श्रम से भाँति-भाँति की जल की धारायें बहने लगीं ॥ ११ ॥ उन धारावों से सब व्याप्त हो गया, केवल जल को छोड़ कुछ भी नहीं दिखायी दिया, तब विष्णुभगवान् ने यह अद्भुत दृश्य देख आश्चर्य्य युक्त हो अहो! यह क्या है ऐसा कह शिर को हिलाया, तब कान से प्रभु की मणि आगे गिर पड़ी ॥ १२-१३ ॥ जहाँ पर वह मणि गिरी वह मणिकर्णिकातीर्थ हुआ। जल के समूह से जब पंचक्रोशी डूबने लगी, तब निर्गुण-शिवजी ने उसे त्रिशूल पर धारण किया, भगवान्‌विष्णुजी तब उसमें प्रकृति के साथ सो गये ॥ १४ ॥ १५ ॥ कुछ काल तक उस जल में भगवान् सोये रहे तदनन्तर उनके नाभिकमल से सर्वलोक के पितामहब्रह्माजी उत्पन्न हुये ॥ १६ ॥ श्रीशङ्करजी की आज्ञा लेकर ब्रह्माण्ड के भीतर जो कुछ चराचर है उसकी सृष्टि ब्रह्माजी ने किया ॥ १७ ॥ इस प्रकार गुणवान् प्रभु ने स्वयं ब्रह्माण्ड की रचना किया तब लोकहितार्थ भगवान् शिव ने विचारा ॥१८॥ कि ब्रह्माण्ड में कर्म से बँधे हुये जीव मुझे कैसे देखेंगे, ऐसा विचार कर ही पंचक्रोशी को भूमि में रख दिया ॥ १९ ॥ यह पंचक्रोशी लोक में शुभ देनेवाली कर्मों के नाश करनेवाली सिद्ध है, और अविमुक्त नामक ज्योतिर्लिङ्ग परमात्मा ने स्वयंस्थापन किया ॥२०॥ स्थापन कर भगवान् शिवजी बोले कि हे अविमुक्तेश्वर ! यह क्षेत्र हमारा अंशस्वरूप है इसलिये आप कभी इसे न छोड़ेंगे। ऐसा कहकर भगवान् हर ने पंचक्रोशीरूप काशीक्षेत्र को त्रिशूल से उतारकर भूलोक में स्थापन किया था।

श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो! ब्रह्माजी के दिन के अंत में विश्व निश्चित ही नष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब

शंकरजी पंचक्रोशी को त्रिशूल के ऊपर धारण कर लेते हैं; फर जब ब्रह्मसृष्टि हो जाती है तब फिर भूतल पर रख देते हैं ॥ २३ ॥ कर्मों के कर्षण से (नाश करने से) यह क्षेत्र काशी कहा जाता है; और अविमुक्तेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग काशी में सदैव स्थित रहता है ॥ २४ ॥ जो महपापियों को भी मुक्तिप्रदान करता है। अन्यत्र (अन्य पुरियों में) सारूप्य मुक्तिप्राप्त होती है ॥ २५ ॥ पर इसी काशीपुरी में सर्वश्रेष्ठ सायुज्यमुक्ति जीव प्राप्त करते हैं। जिनकी कहीं गति नहीं है, उनको वाराणसीपुरी, मुक्ति, गति देनेवाली है ॥ २६ ॥ पंचक्रोशी कोटियों हत्या के विनाश करनेवाली परम पवित्र मान ी गई है। हे मुनीश्वरो! देवता लोग भी इसमें मरने की इच्छा रखते हैं ॥ २७ ॥

श्रीब्रह्माजी और भगवान् श्रीविष्णुदेवजी श्रीकाशीपुरी कीश्लाघा करते हैं। काशीजी का माहत्म्य शतवर्षतक वर्णन किया जाय तो भी पूर्ण नहीं हो सकता ॥ २८ ॥

सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो! तब भी कुछ कहते हैं। कैलासपति निर्गुण, सगुणरूप भगवान् श्रीशङ्करजी घूमते हुये किसी समय श्रीकाशीजी आये; और वाराणसीपुरी में आकर उन्होंने देखा ॥ २९ ॥ ३० ॥ कि दर्शनमात्र से सर्वपापों को हरण कर लेने वाला, अविमुक्तेश्वर नामक, स्वकीय-ज्योतिर्मयलिङ्ग विराजमान है। अविमुक्तेश्वरजी का माहात्म्य जैसा भगवान् शंकरजी ने कहा है ॥ ३१ ॥ हे महर्षियो! विस्तारपूर्वक मेरी तो क्या गणना, ब्रह्माजी भी शतकोटिवर्ष कहें तो भी समर्थ नहीं हो सकते ॥ ३२ ॥ श्रीअविमुक्ते-श्वरजी भी भगवती पार्वतीजी के सहित शंकरजी को देख परम आनन्द को प्राप्त हुये और विधिपूर्वक भगवान् भव की

पूजा किया ॥३३॥ अनेकों प्रकार के दण्डवत्, प्रणाम, मंत्रस्तुतियों से देवदेवजगत्पति भगवान् शंकर का स्तवन किया; और बोले कि हे स्वामिन्! हम सर्वथा आप के हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ ३४ ॥ हे देवेश हे जगत्पते! हमारे ऊपर कृपा करो और लोक हितार्थ आप यहाँ स्थिति करें यही हम आप से प्रार्थना करते हैं ॥ ३५ ॥ श्रीअविमुक्तेश्वरजी बार बार इस प्रकार प्रार्थना करते नेत्रों से जल बहाते हुये भगवान् के चरणों को नहीं छोड़ा ॥ ३६ ॥

और बोले कि हे प्रभो! आप काशीजी को ही राजधानी बनाइये; और हम अचिन्त्य परब्रह्मसुख के लिये ध्यानयुक्त हो स्थित होंगे ॥ ३७ ॥ मुक्ति के देनेवाले लोक में आप ही हैं और दूसरा कोई नहीं, इसलिये लोकोपकारार्थ उमासहित आप यहाँ स्थित हो जाँय ॥ ३८ ॥ जब इस प्रकार श्रीअविमुक्तेश्वरजी ने प्रार्थना की तब कपाल की मुक्ति के लिये जगत्पति परमकृपालु श्रीशंकरजी लोगों को मुक्ति देने के लिये स्थित हो गये ॥ ३९ ॥ श्रीसूतजी का यह वचन सुनकर परमपवित्र अन्तःकरणवाले ऋषिगण परम भक्तियुक्त हो बोले कि कपाल की क्या कथा है? ॥ ४० ॥ "सूतजी बोले" कि प्रथम कदाचित् देवश श्रीशंकरजी भक्तों के हितार्थ गिरिनन्दिनी के साथ भ्रमण करते हुये ब्रह्मलोक पहुँच गये ॥ ४१ ॥

श्रीब्रह्माजी धर्म हेतु आतिथ्य करते हुये देवेश श्रीशंकरजी की बहुत मानपूर्वक पूजादि की ॥ ४२ ॥ और अनन्तर चारों मुखों से स्तुति करने लगे, परन्तु एकमुख से (पंचममुख) से शंकरजी ने दुर्वाद सुना ॥ ४३ ॥ तब चार मुखों को देखकर तो शंकरजी संतुष्ट हुये, पर पाँचवें मुख को दुर्मुख (दुष्टमुख) देखकर दुःखित हुये ॥ ४४ ॥ और आश्चर्ययुक्त हो बोले कि य

मुख दुष्टमुख है इसलिये इसे काटना चाहिये ऐसा विचार कर मनुष्यों के कल्याण करनेवाले शिवजी ने ब्रह्माजी के उस दुष्ट-मुखयुक्तमस्तक को काट दिया। अपनी अघोर (तीव्रदृष्टि) से ब्रह्माजी को पीड़ित करते हुये जब मस्तक काट दिया ॥४५॥४६॥ तब वह ब्रह्मकपाल शंकरजी की पीठ में लग्न हो गया, उस कपाल से युक्त हो शंकरजी सभी लोकों में गये ॥ ४७ ॥ जहाँ-जहाँ श्रीशंकरजी जाते थे तहाँ-तहाँ वह ब्रह्मकपाल पीछे-पीछे जाता था। शंकरजी श्रीकाशीक्षेत्र की महिमा प्रकाश करने के विचार से श्रीकाशीक्षेत्र में आये। ज्योंही काशी आये त्योंही कपाल दूर होकर स्थित हुआ। श्रीशंकरजी मन ही मन स्वयं यह विचार करने लगे कि इस क्षेत्र का माहात्म्य आश्चर्यमय है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ यह विचार कर लोक में इस अद्भुत वृत्तान्त को विख्यात करते हुये श्रीअविमुक्तेश्वरजी की प्रार्थना से काशीपुरी में स्थित हो गये ॥ ५० ॥ जिस दिन से श्रीशंकरजी काशीजी में आ विराजमान हुये उसी दिन से श्रीकाशीजी अतीव श्रेष्ठ हो गई ॥ ५१ ॥

इत्यादि कहते हुये सूतजी बोले कि इसके अनन्तर श्रीत्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति कहेंगे जिसको सुनकर मनुष्य सर्व पापों से छूट जाता है ॥ ५२ ॥

४—काशी (वाराणसी) पुरी

ऐसा कोई पुरुष न होगा जो श्रीकाशीपुरी का नाम न जानता होगा। यह तीर्थ आर्यजाति के गौरव की जन्मभूमि, अतीव प्राचीन मोक्षप्रद, एक महातीर्थ है। इसकी महिमा और प्राचीनता का

विवरण आप लोगों को ऊपर शिवपुराणोक्त लेख के द्वारा ज्ञात हो जायगा। इसलिये इस पुरी का महत्त्व वर्णन सामर्थ्य के भीतर नहीं है। उक्त शिवपुराणादि ग्रन्थों के लेखों से यह ज्ञात होता है कि साक्षाद् ब्रह्मादिदेव, शेष शारदा यदि कोटियों वर्ष इस तीर्थ की महिमा वर्णन करें तो नहीं कह सकते हैं। जिस प्रकार "राम न सकहिं नाम गुण गाईं" उसी प्रकार साक्षात् शिवजी भी यदि काशी का महत्त्व कहना चाहें तो नहीं कह सकते। यह पुरी मोक्ष देने में अतीव प्रसिद्ध है। जिस मोक्ष को वड़े-बड़े साधनों द्वारा योगी मुनिगण नहीं प्राप्त कर सकते, उसी मोक्ष को "तव पुर कीट पतंगहु पावें" अर्थात् महापापी से पापी कीट पतंगादि भी जीव इस पुरी में मोक्ष भागी हैं। इसलिए भारतीय धर्मनिष्ठ विचार-शील पुरुष अन्तकाल में श्रीकाशीजी की शरण लेते हैं। इस पुरी का यह महत्व है कि यदि महापापी भी है उसे यमयातना नहीं भोगनी पड़ती, उसे भैरव यातना दंड मिलता है जब वह पाप से पूत हो जाता है तव उसे भगवान् सदाशिव तारकब्रह्म का उपदेश दे ज्ञान उत्पन्न कर मुक्त देते हैं। कुछ लोगों का मत है कि शंकरजी श्रीरामनाम का अथवा तारकमंत्र जो राममंत्र है उसका उपदेश देते हैं और मरा शरीर यदि गंगाजी के गोद में अर्पण किया जाय तो दाहिनाकान उसका ऊपर ही रहता है। अस्तु। वैदिक सिद्धान्त तो यह है कि बिना ज्ञान के मुक्ति हो ही नहीं सकती है। यथा—"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" "ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" "ज्ञात्वा एवं सर्वपाशापहानिः"।

इत्यादि वेद वाक्यों से जाना जाता है। कि बिना ज्ञान के कैवल्यमुक्ति नहीं हो सकती है तब "काश्यां मरणान्मुक्तिः" अर्थात् काशी में मरने से मुक्ति होती है यह कैसे सिद्ध होता है ? इसके उत्तर में श्रीगोस्वामीजी का एक सोरठ पद्य बहुत अच्छा

निर्णय देता है–"मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञानखानि, अघहानि कर। जहँ वस शम्भु भवानि सो काशी सेइय कस न॥" अर्थात् श्रीकाशी जी मुक्ति की जन्मभूमि है, बिना ज्ञान के यदि मुक्ति नहीं होती तो वह ज्ञान की खानी भी है; यदि "ज्ञानमुत्पद्यते-पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः" इस वचनानुसार बिना पापक्षीण हुये ज्ञान होना असंभव है तो श्रीकाशीजी पापक्षय करनेवाली भी हैं क्योंकि वहाँ साक्षात्सदाशिव उमासहित विराजमान हैं। इसलिये काशी में मरने से मुक्ति होती है इसमें संदेह नहीं है।

श्रीकाशीपुरी में गंगाजी का अतीव गम्भीर प्रवाह स्वतः उत्तरगामी है। यह एक बड़ी विशेष बात है क्योंकि उत्तरवाहिनी गंगधार का बड़ा महत्त्व है। यह पुरी श्रीगंगाजी के वाम भाग में किनारे-किनारे धनुषाकार ऐसी बसी है कि मानो श्रीगंगाजी के नितम्बोपकण्ठ पर स्वच्छ मुक्तामयी काञ्ची विराजमान हो। अथवा श्रीगंगाजी ही काशीपुरी का हरितवर्ण धौतवस्त्र सा ज्ञात होती हैं। इसमें कोई संदह नहीं कि श्रीगंगाजी की शोभा काशी से और श्रीकाशीजी की शोभा गंगाजी से है। यहाँ का ऐसा गंगाजी का दृश्य कहीं नहीं है; यद्यपि गंगाजी का तट सर्वत्र ही अतीव मंजुल है, हरद्वार आदि में भी बड़ा सुहावना है; पर श्री काशीपुरी की कुछ बात ही और है। सैकड़ों पक्के घाट बने हुये हैं। घाटों पर गगनचुम्बी हर्म्यप्रासाद राजामहाराजावों के बनाये हुये उनकी चिरकीर्ति के स्मारकों की भांति किलों के सदृश अटल खड़े बहुत ही भले मालूम हाते हैं। मुगलसरांय ई० आई० आर के बड़े जंकशन से २ आना ≈) काशीजी का लगता है। काशीजो भी एक बड़ा जंकशन है। यहाँ छोटी लाइन बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे भी जाती है। यहाँ कई स्टेशन हैं। काशी स्टेशन को (राजघाट) कहते हैं। मुगलसरांय से जब गाड़ी छूटती है

तब पहिले राजघाट स्टेशन और पुनः बनारसकैंट मिलता है यह जंकशन है यहाँ छोटी लाइन भी आ मिलती है। इसके अलावा बनारससिटी स्टेशन भी है इसे अलईपुर कहते हैं। इन्हीं तीन स्टेशनों में यात्री उतरते हैं; यहाँ सब प्रकार की सवारी आदि हर समय उपस्थित रहती है। तिसमें भी बड़े स्टेशन कैंट में उतरने से अतीव अच्छा है। मुगलसरांय से आनेवाले यात्री काशी (राजघाट में) उतरते हैं। इन स्टेशनों के अतिरिक्त बनारसहिन्दूविश्वविद्यालय के निकट में एक मडुवाडीह स्टेशन भी है पर इसमें सवारी आदि हर समय नहीं मिलती इसलिये उक्त तीन ही स्टेशनों में उतरना यात्रियों को अधिक सुविधाजनक है। स्टेशनों से उतरते ही पण्डे लोग साथ लग जाते हैं और अपनी-अपनी महिमा बखानते हुये यात्रियों को अपने स्थानों में ठहराने के लिये विशेष प्रयत्न करते हैं। पर इसमें यात्रियों की इच्छा ही प्रधान है। चाहे वे पण्डों के यहाँ ठहरें अथवा किसी धर्मशाला आदि में, पण्डों के यहाँ ठहरने में उनको कुछ देना तो अवश्य ही पड़ेगा। काशी जी में राजघाट, तथा बनारसकैंट (सिगरौल) स्टेशनों पर ही धर्मशालायें भी बनी हैं। कैंट की कृष्णधर्मशाला एक वेश्या की बनाई हुई है।

और भी नगर के भीतर विश्वनाथजी के आसपास कई धर्मशालायें हैं। महात्माओं के मठ; मन्दिर भी बहुत हैं इनमें भी यात्री अपनी इच्छानुसार ठहरने की सुविधा कर सकते हैं। बहुत से यात्री यहां ठहने की सुविधा पहिले ही ठीक करके आते हैं। यह असुविधा अनजान यात्रियों को होती है। नगर बड़ा होने के कारण अनजान यात्री हक्का बक्का हो जाता है; ऐसे यात्रियों को प्रथम किसी धर्मशाला आदि में ठहरना चाहिये। धर्मशाला में ठहर कर किसी अपने ठहरने योग्य किसी स्थान को ठीक

कर लेना चाहिये। पर कहीं भी ठहरो लेकिन अपने माल, असवाब, धन, जन की रक्षा ठीक रखना चाहिये। क्योंकि यहां सभी प्रकार के मनुष्य रहते हैं। विना जाने किसो अनजान आदमी की बातों में विश्वास न करना चाहिये। यहां गुंडा प्रकृति के लोग भी कुछ पाये जाते हैं जिनका काम यही है कि वे किसी को मार बैठते हैं। किसी के धनादि हरण करने को उसके पीछे लग जाते हैं। और समय पा कर धोखा देते हैं।

सावधानी

(१) गुंडादिकों से सावधान रहो।

(१) दर्शनों में भीड़ के समय गिरहकट लोग भी रहते हैं। अतः सावधान रहो।

(३) किसी बिना जान पहिचान के आदमी की दी हुई चीजों को मत खावो।

(४) भाँगादि नशे की चीजों को सेवन कर असावधान न बनो।

(५) सांड यहाँ गली-गली घूमते मिलेंगे यद्यपि ये मारते नहीं है तथापि जब गऊ के पीछे दौड़ते हैं तब तंग गलियों में जान का खतरा हो जाता है। इत्यादि बातों का ध्यान रखते हुये तीर्थ करो

प्रथमदिन का कर्तव्य

अपनी स्थिति ठीक करके श्रीगंगाजी के स्नान को जाना चाहिये। प्रथम-प्रथम मणिकर्णिकाघाट में विधिपूर्वक स्नान, ध्यान, संध्या, तर्पणादिकर श्रीविश्वनाथजी के दर्शनों को जाना चाहिये। मणिकर्णिकाघाट से सीधा रास्ता श्रीविश्वनाथजी को जाता है। मार्ग में भी जगह-जगह देवगण विराजमान हैं।

विश्वनाथजी के मंदिर में पहुँचकर यात्रीगण कृत-कृत्य हो जाते हैं। श्रीविश्वनाथजी द्वादशज्योतिर्लिङ्गो में राजा (सर्वप्रधान) माने गये हैं। द्वार पर फूल मालायें विकती रहती हैं। श्रीविश्वनाथजी की पूजा सामग्री पहिले ही ठीक कर लेना चाहिये। दर्शन करते ही पापपुंज तूलराशि की भांति भस्म हो जाते हैं। भक्तहृदय, अपने प्रभु के दर्शन पाकर, भक्तिभाव से उमड़ पड़ता है एक हाथ की उंचाई की अतीव चिक्कण ज्योतिर्मयमूर्ति मंदिर के एक भाग में चांदी के अर्घे में जो एक चौकोर गर्ताकार है विराजमान है। सहस्रों की संख्या में नरनारी भक्त जन भांति २ जल दुग्ध आदि से स्नान कराते और विविधोपचारों द्वारा भगवान् भूतभावन का पूजन कर अपने मानव जीवन को सफल बनाते हैं। उत्सव समयों पर बड़ी भीड़ हो जाती है। यों तो कुछ न कुछ भीड़ सदैव ही रहती है। परन्तु शांतहृदयद्वारा सप्रेम भगवान् की पूजा, स्नान, चन्दन अक्षत, बिल्व, पुष्प, धूप, नैवेद्यादि से कर स्तुति करना और प्रणामादि से प्रभु को संतुष्ट कर अविमुक्तेश्वरजी, नन्दीश्वरजी तथा सामने के मंदिर में श्रीदण्डपाणीश्वरजी के दर्शनादि करना, नीचे उत्तर परिक्रमा में भी कई देव पधरे हैं, सबों का दर्शन करते विश्वनाथजी की कचहरी जाना चाहिये। यहां बहुत शिवलिंग इकट्ठे पधरे हुये हैं और व्यासजी भी विराजमान हैं। यहां दो गणेश मूर्तियां दीवार पर हैं जिनका शस्त्रोक्त लेख भी है। पुनः परिक्रमा देते दरवाजे से बाहर जाते ही सामने श्रीगणेशजी के दर्शन होंगे। यह स्थान खुला ४८ खम्भों से बना अतिसुन्दर ऊपर से छाया हुआ है यहां कई तीर्थ और ज्ञानवापीकूप है। यह कूप जाली से छाया है ऊपर कपड़ा डाले रहते हैं कि पैसा आदि नीचे न जाय यहां भी विश्वनाथजी का पूजनादि सभी लोग करते और वापी का

जल पान करते हैं। सदैव ब्राह्मण बैठा रहता है। सुना जाता है कि—

मूर्तिध्वंसक मुसलमान बादशाह औरंगजेब जब विश्वनाथजी की मूर्तिध्वंस करने के विचार से मंदिर में आया उस समय विश्वनाथ जी इसी ज्ञानवापीकूप में समा गये। मंदिर में मूर्ति उसे तोड़ने को न मिल सकी, तव उसने उसी मंदिर के ऊपर ही मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनाई जो बहुत पुष्ट पाषाण की बनी हुई खड़ी है। मस्जिद के नीचे का भाग देखने से यह अब भी ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन मंदिर यही है। एक सच्चे आर्यपुरुष के हृदय को यह दृश्य दुःखद है; उसी समय कलिकाल न माननेवाले पुरुष भी भारत का कलिकाल समझ जाते हैं। यहां जगह विशद है स्थान-स्थान पर ही देवतावों के स्थित होने के लेख पाये जाते हैं। यहां एक पत्थर का सिंहासन सा बना हुआ है उस पर समय-समय कथा-वार्तादि महात्मावों के सदुपदेशादि होते रहते हैं। पास ही एक विशाल नन्दीश्वर जी बैठे हुये हैं। एक छोटा सा मंदिर है; उसमें महाकालेश्वरजी शिव की मूर्ति विराजमान है, और नीचे तारकेश्वरजी की पीठ सी है। पास में एक विशाल पिप्पल का वृक्ष है वहां भी देव पधरे हैं। इस प्रकार प्रदक्षिण करते पुनः ज्ञानवापी पर विश्राम लेना चाहिये ज्ञानवापी पर जो गणेशजी हैं उन्हीं की अर्चना कर पंचतीर्थी या अन्तर्गृही आदि परिक्रमा आरम्भ की जाती है। जब काशीजी में विश्वनाथजी की मूर्ति का अभाव हो गया; तब भक्तगण उपवास कर पड़ गये। उस समय भगवान् विश्वनाथजी ने स्वप्न में यह बताया कि हम नर्मदाजी में हैं। वहां जाकर भक्त लोगों ने ज्योंही गोता लगाया त्योंही दो मूर्तियां हाथ में आईं; उन्हीं मूर्तियों को लेकर लोग आये; पर यह निश्चय करना कठिन था, कि इन दोनों मूर्तियों में

कौन विश्वनाथ मूर्ति है। मंदिर बन जाने पर मंदिर में दोनों मूर्तियां बंद कर दी गईं। प्रभात में एक मूर्ति स्वयं चूर्ण हो गई दूसरी विश्वनाथ जी समझ कर पधराई गई है। ऐसी प्रसिद्धि चली आती है। इस प्रकार ज्ञानवापीस्थ तीर्थों को कर पुनः विश्वनाथ जी के मंदिर में आइये। और मंदिर के भीतर ही द्वार के बगल में श्रीअविमुक्तेश्वर शिवजी तथा भगवान् श्रीसत्यनारायणजी के दर्शन हैं, उत्तरीभाग में श्रीभगवतीजी तथा अहल्याबाई की पीतल की मूर्ति है। कचहरी द्वार, पर श्रीहनुमान् जी आदि देवगण हैं। श्रीशंकरजी के मंदिर के ऊपर साढ़ेबाइसमन सोने के पत्र चढ़े हुये हैं। कुछ लोगों का कहना है कि पंजाब के महाराज रणजीतसिंहजी के चढ़वाये हैं। दर्शन करते ही मन आनन्दित हो जाता है। कुछ देर मंदिर में ठहर कर भगवान् का स्मरण करना चाहिये। प्रभात के तीन चार बजे से ही भगवान् शशांकमौलि के स्नान तथा दर्शनादि होने लगते हैं 'जय जय, बं बं, बाबाविश्वनाथ की ध्वनियों से मन्दिर मुखरित हो जाता है। सैकड़ों पण्डित, विद्वान् अपने अपने वेदस्तवनों से भगवान् भवानीपति की भावना करते हैं। शिवाभिषेकादि तो सदैव कितने ही होते ही रहते हैं। मध्याह्न में कई घड़े दूध से भगवान् का स्नान होता है, पुनः घृतादि से स्नान करा, गंगोदक से स्नानादि के अनन्तर विधानपूर्वक पूजा, आरती, भोगादि लगते हैं। यह पूजा एक राज्य की ओर से होती है। इस प्रकार दर्शन सुख प्राप्त कर श्रद्धालुयात्री गद्गद चित्त हो आनन्द सिन्धु में मग्न हो जाते हैं और अपना जन्म सफल मानते हुये, अपनी यात्रा परिपूर्ण हुई समझते हैं। ऐसी पूजा जैसी बाबा विश्वनाथ की होती है। भारत में मेरी दृष्टि से शायद ही कहीं होती हो; किन्तु यह भी कहना अनुचित न होगा कि नहीं होती है।

श्रीविश्वनाथजी के दर्शनान्तर अन्नपूर्णाजी तथा विश्वनाथजी के मध्य में एक हनुमान् जी का मंदिर है। यहाँ एक वटवृक्ष है, उसे अक्षयवट कहते हैं, पास ही शनिश्चरदेव का भी दर्शन है। यहाँ दर्शन करते हुए श्रीअन्नपूर्णाजी के मंदिर आ जाना चाहिये।

श्री अन्नपूर्णाजी का मन्दिर पाषाण का बना हुआ श्रीविश्वनाथजी के मंदिर से विस्तार में बड़ा है। बाहर भिक्षुक बंगाली वृद्धस्त्रियाँ अधिक संख्या में बैठी रहती हैं, लोग यथाशक्ति इन्हें कुछ न कुछ देते हैं। भीतर जगन्माता श्रीअन्नपूर्णा भगवतीजी विराजमान हैं। दर्शनमात्र से त्रैताप दूर करती है। प्रभातकाल में भोग के पहिले पहिले भगवती के ऊपर भी लोग जल चढ़ाते और अपने हाथों से सप्रेम पूजा करते हैं। मूर्ति अतीव मोदकरी करुणोद्गार करती दृष्टिगोचर होती है। यहाँ प्रथम कई महन्त भागी थे जो इनकी पूजा में भाग लेते थे। दूसरे समय भोग के अनन्तर माता की शृंगारयुक्त झाँकी होती है। तब जल नहीं चढ़ा सकते; यह दर्शन तो अतीव चित्ताकर्षक है। यही श्रीअन्नपूर्णाजी काशीपुरी क्या निखिल जगत् की अन्नपूर्णा हैं। परिक्रमा में सूर्यदेवजी, ब्रह्मचारीआश्रम, तथा और देवताओं की मूर्तियाँ हैं। अनुष्ठानी पण्डित विद्वानों का तो यह प्रधान केन्द्रस्थान ही है। सैकड़ों की संख्या में पण्डितलोग अनुष्ठान करते दिखाई पड़ते हैं। मंदिर में कुछ काल भगवान् का स्मरण कर अन्नपूर्णाजी के सामने के द्वार से भीतर जाने पर अनूपम दर्शन विद्यमान हैं। जैसे दर्शन यात्रियों को बहुत कम दृष्टिपथ में आ सकते हैं। यहाँ कई तरह के दर्शन हैं। यह श्रीराममंदिर कहा जाता है। मंदिर के मध्यभाग में भगवान् करुणामूर्ति, धर्मसेतु, पतितपावन, अखिलब्रह्माण्डनायक श्रीरामचन्द्रजी महाराज के पंचायतन के दर्शन हैं।

दर्शन करते ही आनन्द सिन्धु उमड़ पड़ता है। दूसरे समय श्रृंगारयुक्त झांकी करते ही कौन ऐसा पाषाण हृदय पुरुष है जिसका चित्तद्रवीभूत न होगा। ऐसा मनमोहक दर्शन बड़े पुण्य-पुंज के प्रभाव से मिलता है। भगवान् के दाहिने ओर श्रीकालीजी, श्रीसरस्वतीजी, श्रीसरस्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी और भगीरथमहाराज की प्रार्थनावश श्रीशंकरजी श्रीगंगाजी को शिर में धारण करने को सन्नद्ध हैं। भगवतीजी; नन्दिकेश्वरजी तथा भगीरथजी बड़े दुबले श्रीगंगाजी को स्वर्ग से उतरती हुई देख रहे हैं। बड़ा अनोखा दर्शन है। बायें ओर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी, श्रीलक्ष्मी-नारायणजी का भी दर्शन शंकरजी पार्वती सहित, नृसिंहदेवजी के दर्शन अत्यन्त मनोहर विद्यमान हैं। इस प्रकार दर्शन का आनन्द लेकर श्रीहनुमान्‌जी के पास के द्वार से जब बाहर निकलने लगते हैं तब एक मंदिर दायें हाथ सीढ़ी पर ही मिलेगा वहाँ श्रीशिवजी विराजमान हैं दर्शन बाहर से ही झरोखे द्वारा होता है। इसके अनन्तर ढुंढीराज श्रीगणेशजी के दर्शन मिलते हैं। एक बार श्रीविश्वनाथजी काशी छोड़कर अन्तर्हित हो गये; सब देवतों ने ढूँढ़ा पर नहीं मिले तब गणेशजी ढूँढ़कर लाये तब से इनका नाम ढुंढिराज गणेशजी पड़ गया। इनका दर्शन करते श्रीसाक्षीविनायकजी पास ही में विराजमान हैं, दर्शन कर अपने स्थान पर आ जाना चाहिये; और भोजन विश्राम करना चाहिये। दूसरे समय भगवान् कालभैरवजी के तथा दण्डपाणिजी के दर्शन को जाना चाहिये। भगवान् भूतनाथ भैरवजी श्रीकाशीपुरी के रक्षक हैं। इनकी कृपा विना काशीवास नहीं मिलता है। मंदिर में दिव्यमूर्ति विराजमान है। यहाँ विभूति का ही प्रसाद देते हैं। और भैरवजी के गंडे रेशमी काले तागे के विकते रहते हैं। इन्हें लोग प्रसाद बाँटने के लिये घरों ले जाते हैं। यहाँ कुत्ते

रहते हैं उनको लोग मिठाई खिलाते हैं यदि कुत्ते जिसकी मिठाई खा लेते हैं; उसके ऊपर श्रीभैरवजी प्रसन्न समझे जाते हैं और उसे काशीवास हो सकता है ऐसा लोग समझते हैं। इसके अनन्तर सायंकाल श्रीकाशीविश्वनाथजी की आरती लगभग ८ बजे होती है। आरती का दर्शन अवश्य करना चाहिये। ऐसी आरती भूतल पर कहीं नहीं देखने में आवेगी। भगवान् का शृङ्गार होता है। मन्दिर धोकर पोंछ दिया जाता है। विद्वान् पढ़े लिखे पुजारी भस्म त्रिपुण्डादि रुद्राक्ष धारण कर शिवरूप हो लगभग एकादश की संख्या में अपनी अपनी आरती साजकर एक साथ बैठते हैं और वेदादि संयुक्त स्तवन करते हुए भगवान् भवानीपति की आरती उतारते हैं। तरह तरह के डमरू आदि बाजा तालस्वर के साथ बजाये जाते हैं। शम्भो ! महादेव की ध्वनियों से गगन गूँज उठता है। आनन्द की वृष्टि होने लगती है। ऐसा आनन्द भर जाता है कि चित्त निश्चल भाव से आनन्दाम्बुधि में डूब जाता है। इस प्रकार आरती का आनन्द प्राप्तकर यदि कुछ खरीदना हो तो खाने पीने की चीजें पास ही कचौड़ीगली में अच्छी से अच्छी मिल सकती है। यहाँ की कचौड़ी प्रसिद्ध हैं। इसी पर इसका नाम कचौड़ीगली पड़ा है। यहाँ से आवश्यक वस्तुओं को लेकर अपने विश्राम स्थान पर आ विश्राम लेना चाहिये। यह प्रथम दिन का कार्य समाप्त हुआ।

दूसरेदिन श्रीदशाश्वमेधघाट में स्नानादि कार्यों को कर श्रीविश्वनाथजी की पूजा को आना चाहिए। आज के दिन यात्री को अपनी शक्ति के अनुसार यदि उससे बन पड़े तो श्रीविश्वनाथ जी का अभिषेक दुग्धादि द्रव्यों तथा श्रीरुद्राष्टाध्यायी द्वारा करवाना, और ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा दे भोजनादि करवाना, चाहिये। हवनादि कृत्य भी करने चाहिये। अशक्त धनहीन

यात्रियों का दर्शन ही पर्याप्त है। इसी प्रकार श्रीअन्नपूर्णादि देवों की पूजा अर्चा कर स्वयं भोजनादि कृत्यों को करें। प्रथम यहाँ पितरों के लिए श्राद्ध तर्पणादि क्रियायें एक योग्य विद्वान् द्वारा मणिकर्णिकाघाट या दशाश्वमेधघाट पर कर लेना चाहिए तदन्तर अभिषेकादि कार्य में प्रवृत्त होना चाहिये। यही मुख्य यहाँ के कार्य हैं। भोजनादि आराम करने के अनन्तर घूम कर बाजार देखकर आनन्द लेना चाहिये। यहाँ बहुत प्रकार की चीजें जगत् प्रसिद्ध हैं। जैसे रेशमी वस्त्र साड़ी आदि, पीतल के भाँति-भाँति के बर्तन, सोने-चाँदी के राजकीय सामान, आम की ऋतु में यहाँ का लँगड़ा आम बहुत प्रसिद्ध है, तरह-तरह की मिठाइयाँ, बंगाली मिठाइयाँ और भी तरह-तरह की चीजें यहाँ मिलती हैं। नगर बहुत बड़ा है। इसलिए एक जानकार आदमी साथ लेने से आवश्यक वस्तुएँ उचित दामों पर मिल सकेंगी। अन्यथा उसे ठगे जाने का संभव है। यहाँ प्रायः सभी वस्तुएँ मिलती हैं जो कलकत्ता बम्बई में भी न मिलेंगी वे यहाँ मिलेंगी, अपनी आवश्यकता अनुसार यात्रीगण ले सकते हैं।

तीसरे दिन यात्रियों को यह उचित है कि प्रभात में उठकर अपनी शारीरिक क्रियावों को समाप्त कर संक्षिप्त स्नानादि कर्मों को कर अस्सी नदी और श्रीगंगाजी के संगम पर विराजमान अस्सी संगमेश्वर जी महादेव का दर्शन कर असीघाट पर आ एक छोटी सी नौका (डोंगी) किराये पर ठीक कर लेवें, पूरी नाव का किराया १) रुपये के भीतर ही रहता है। जैसा करते बने ठीक कर उसी सें असीसंगम स्नान के अनन्तर संकल्पादि यदि करना हो तो कर लेना चाहिये, और पञ्चतीर्थीयात्रा के लिए गमन करना चाहिये। पञ्चतीर्थीयात्रा के पांच ही मुख्य घाट हैं। १ अस्सीसंगम, २ दशाश्वमेध, ३ मणिकर्णिकाघाट,

४ पञ्चगंगाघाट, ५ वरुणासंगमघाट, इन्हीं घाटों में स्नान करना वहाँ के प्रधान देवों का दर्शन कर अपने स्थान पर लौट आना चाहिये, यह पञ्चतीर्थीयात्रा कहलाती है। असीसंगम यह हरद्वारतीर्थ, दशाश्वमेध यह प्रयागतीर्थ, मणिकर्णिका यह काशीतीर्थ, पञ्चगंगा और वरुणसंगम ये नदियों के मिलने से तीर्थ हुए हैं। पञ्चतीर्थी करते समय नौका पर से श्रीकाशीपुरी की अनुपम छटा का दर्शन होता है। बहुत लोग घाटों का फोटो ले लेते हैं। बिजली हो जाने से इन्हीं पांच घाटों पर बड़े पावर की रोशनी दी गई है जिससे रात के समय बड़ी ही शोभा हो जाती है। गंगापुल पर रोशनियों की छटा तथा घाटों पर की शोभा मिलकर सदैव दीपमालिका काशीपुरी में बनी रहती है। काशीपुरी में घाट बहुत से हैं; पक्के घाटों पर बड़े-बड़े ऊँचे गृह तथा राजावों के राजमहल, संन्यासियों के अखाड़े किलों की भाँति अटल बड़ी पक्की नींव पर खड़े हैं। घाटों पर इस प्रकार की बसावट और गंगा जी की शोभा भारत में किसी नगर या तीर्थ की नहीं है। श्रीगंगाजी भी यहाँ अगाधरूप में सदैव भरी रहती हैं इसलिए यात्रियों को सावधानी से स्नान करना चाहिये क्योंकि किनारे ही पर बहुत गहरा जल रहता है। गर्मी के दिनों में घाटिया लोग गंगाजी में बहुत दूर तक काष्ठ के पटरों को बाँध कर उन पर छाया कर देते हैं।

उन पटरों पर गंगाजी की गोद में बैठे हुये, महात्मा, साधु, संन्यासी, विद्वान्, पंडित, विद्यार्थीगण भस्म त्रिपुंडादि धारण किये ऋषिकल्प, संध्या, तर्पण, पूजन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। तीर्थ की शोभा उनसे और उनकी तीर्थ से शोभा अनुपम है। सभी बात से परिपूर्ण यह शोभा श्रीविश्वनाथ पुरी ही की है। अकिंचन प्राणी के प्राण पोषणार्थ श्रीअन्नपूर्णाजी किसी न किसी

रूप में घूमा ही करती हैं। काशीपुरी का यह महत्त्व है कि पैसा कौड़ी कुछ भी न हो, और प्रयत्न करने पर भी यदि कुछ न मिले तो किसी न किसी रूप से श्रीअन्नपूर्णाजी उसे भोजन दे जाती हैं; कोई भूखा नहीं सो सकता है। अन्नक्षेत्र भी यहाँ सैकड़ों की संख्या में हैं लोग कहते हैं कि ३६० क्षेत्र हैं। श्रीगंगाजी में प्रसिद्धघाट निम्नलिखित प्रकार से हैं। १ असीघाट २ तुलसीघाट ३ शिवालयघाट ४ हनुमानघाट ५ केदारघाट ६ हरिश्चन्द्रघाट इसी घाट में महाराज हरिश्चन्द्र डोम के हाथ बिक कर 'कर' लिया करते थे, मुर्दे दो ही घाटों पर फूँके जाते हैं हरिश्चन्द्रघाट तथा मणिकर्णिकाघाट पर, हरिश्चन्द्रघाट पर हरिश्चन्द्रेश्वर महादेव विराजमान हैं। इसी प्रकार सब तीर्थों पर वहाँ के प्रधान देव स्थित हैं। अतः उनका दर्शन करने से ही यात्रा सफल होती है। ७ दशाश्वमेधघाट ८ ललिताघाट ९ मणिकर्णिकाघाट १० चौसट्ठी-घाट, ११ गणेशघाट १२ दण्डीघाट १३ मानमंदिरघाट १४ दुर्गा-घाट १५ रामघाट १६ पंचगङ्गाघाट १७ ब्रह्माघाट १८ मीरघाट १९ गौघाट २० त्रिलोचनघाट २१ पिशाचमोचनघाट २२ अग्नीश्वरघाट २३ संकठाघाट २४ वरुणासंगमघाटादि बहुत प्रसिद्ध घाट हैं। श्रीकाशीपुरी की महिमा शंकर जी ही जाने विशेष विवरण काशीखण्ड में देख सकते हैं। श्रीवरुणासंगम पर आदिकेशव जी विराजमान हैं उनका दर्शन अवश्य करना चाहिये। नगर का मलमूत्र वरुणासंगम पर ही गिराया गया है अतः वहाँ का जल दूषित है। यह काल की कराल महिमा है कि इसी प्रकार ये महातीर्थ दूषित किये गये और किये जा रहे हैं। इस प्रकार महामहत्त्वशालिनी पंचतीर्थीयात्रा एवं यथाशक्ति अन्य तीर्थों को कर अपने स्थान पर लौट भोजन विश्रामादि करना चाहिये। और सायंकाल बाबाविश्वनाथ जी के दरबार में पहुँच

आरती आदि का उत्सव देखते हुये नित्य यात्रा कर अपने स्थान पर आ शयन करना चाहिये। नित्ययात्रा में १ बाबा विश्वनाथ जी २ हनुमानजी ३ अन्नपूर्णाजी ४ ढुंढीराजगणेशजी ५ और साक्षीविनायजी प्रभृति हैं।

श्रीकाशीपुरी में तिल-तिल भूमि पर तीर्थ विराजमान हैं अर्थात् जिस प्रकार शिवपुराण में पंचकोशी की महिमा बताई गई है यह वैसी ही है। यह पुरी महामहिमाशालिनी होते हुये आज दिन भी अपने सामने भारत में या सारे संसार में सर्व वस्तु परिपूर्ण कोई दूसरा स्थान नहीं रखती है। इस पुरी में आकर अन्तर्गृहीयात्रा अवश्य कर लेना चाहिये। यदि अन्तर्गृही यात्रा हो गई तो उसमें प्रधान-प्रधान सभी शिवदर्शन तथा तीर्थ हो जायंगे। पर अन्तर्गृहीयात्रा विना जानकार मनुष्य के नहीं हो सकती; इसलिये उस जानकार पुरुष को संतुष्ट करके साथ में ले लेने से बड़े आनन्द के साथ यह यात्रा हो जायगी; अन्यथा भूल भटक जांयगे। यात्रा पूर्ण न होकर कष्ट पायेंगे। जिस समय मैंने यह यात्रा की थी, उस समय जानकार महात्मा लोग साथ होने पर भी भूल गये, और एक ऐसे निर्जन स्थान में पहुँच गये जहाँ कोई मार्ग बतानेवाला न था चारों ओर खंड़हर (गिरे हुये) मकान थे हमलोग किं कर्तव्य विमूढ़ हुये मार्ग सोच रहे थे कि किधर जांय, इतने में उन्हीं खड़हरों के बीच से एक ८० वर्ष से भी अधिक वय वाली बुढिया निकली और हम सब के पास आ खड़ी हुई, और अपनी एक कोठरी में जो उन्हीं निर्जन खंडहरों के बीच में थी ले गई; बड़े आदर के साथ उसने हम लोगों को बैठाया और बहुत सी शक्कर डाल कर गंगाजल में रस बनाया, हम लोग यात्रा भंग भय से यद्यपि रस पीने से सर्वथा निषेध ही कर रहे थे। पर उसने एक न माना।

उसकी यह दशा देख; हम लोगों ने पूँछा कि क्यों माताजी आप यहीं पर रहती हैं ? उसने उत्तर दिया हां बेटा, हम यहीं रहती हैं। हम ब्राह्मणी हैं, बिना किसी विचार के रसपान कर लो, हम लोगों के मन में उसकी जाति के विषय में ही संशय था, उस वृद्धा ने हम लोगों के हृदय का हाल जानकर संशयरहित कर दिया। हम लोगों का उस पर अधिक श्रद्धा का भाव जागृत हुआ, और हम लोगों की दृष्टि में वह साक्षात् अन्नपूर्णा ही ज्ञात हुई; तब हम लोगों ने रसपान किया। अनन्तर वह वृद्धा बोली कि क्या ढूँढ़ते हो ? हम लोगों ने बताया कि अन्तर्गृही यात्रा करने चले पर आगे कहाँ जाना चाहिये यह ज्ञात नहीं है। उसने कहा आवो हम बताती हैं; यह कह मार्ग बताती हुई अन्तर्गृही के सब शिवलिंगों को पढ़ने लगी, उसे सब याद था। यह देख हम लोग बड़े चकित हुए उसने हम लोगों को मार्ग बता कर जाने को कहा; हम लोग भी उसे प्रणाम कर चल पड़े और फिर कहीं नहीं भूले। हम लोगों की समझ में यह अन्नपूर्णा ही थी; पुनः वह स्थान हम लोगों को ढूँढ़ने पर भी न मिला। अन्तर्गृहीयात्रा निम्नलिखित प्रकार से करना चाहिये।

अन्तर्गृहीयात्रा

स्नानादिकृत्य से निवृत्त हो ज्ञानवापी पर एक गणेशजी की मूर्ति है। वहां जाकर गणेशजी की पूजा प्रणामादि कर मौन होकर मणिकर्णिकाघाट पर आवे और गंगाजी में स्नान कर श्रीमणिकर्णिकेश्वरजी का दर्शन-पूजन करना चाहिये। ततः निम्नलिखित देव दर्शन और पूजादि करना चाहिये।

१ श्रीकम्बलेश्वरजी, २ अश्वतरेश्वरजी, ३ वासुकीश्वरजी, ४ पार्वतीश्वरजी, ५ गंगाकेशवेश्वरजी, ६ ललितादेवी, ७

जरासंघेश्वरजी, ८ सोमेश्वरजी ९ वाराहेश्वरजी, १० ब्रह्मेश्वरजी, ११ अगस्तेश्वरजी, १२ कश्यपेश्वरजी, १३ हरिकेशेश्वरजी, १४ वनेश्वरजी, १५ वैद्यनाथेश्वरजी, १६ ध्रुवेश्वरजी, १७ गोकर्णेश्वरजी, १८हाटकेश्वरजी, १९ कीकलेश्वरजी, २०भारभूतेश्वरजी, २१ चित्रगुप्तेश्वरजी, २२ चित्रघंटेश्वरजी, २३ पशुपतीश्वरजी, २४ पितामहेश्वरजी, २५ कलशेश्वरजी, २६ चन्द्रशेखरेश्वरजी, २७वीरेश्वरजी, २८ विद्येश्वरजी, २९ अग्नीश्वरजी, ३० नागेश्वरजी, ३१ हरिश्चन्द्रेश्वरजी, ३२ चिन्तामणिविनायक, ३३ सेनाविनायक, ३४ वशिष्ठ, ३५ वामदेव, ३६ सीमाविनायक, ३७ वरुणेश्वरजी, ३८त्रिसंधेश्वरजी, ३९ विशालाक्षीदेवी, ४० धर्मेश्वरजी, ४१ विश्ववाहकेश्वरजी, ४२ आशाविनायक, ४३ वृद्धादित्य, ४४ चतुर्वक्त्रेश्वरजी, ४५ब्राह्मीश्वरजी, ४६ मनप्रकाशेश्वरजी, ४७ ईशानेश्वरजी, ४८ चण्डीजी, ४९ चण्डीश्वरजी, ५० भवानीजी, ५१ श्रीशंकरजी, ५२ढुंढीराजजी, ५३ राजराजेश्वरजी, ५४ लांगलीश्वरजी, ५५ नकुलेश्वरजी ५६ परान्नेश्वरजी, ५७ परद्रव्येश्वरजी, ५८ प्रतिग्रहेश्वरजी, ५९ निष्कलक्षेत्रेश्वरजी, ६० मारकण्डेश्वरजी, ६१ गणेशजी। यथाक्रम इनकी पूजा करने के अनन्तर ज्ञानवापी में स्नान करना चाहिये।

स्नानान्तर नन्दिकेश्वरजी, तारकेश्वरजी, महाकालेश्वरजी, दण्डपाणिजी, मोक्षेश्वरजी, वीरभद्रेश्वरजी, अविमुक्तेश्वरजी, और पञ्चविनायकों की प्रणामादि पूजा कर श्रीविश्वनाथ मंदिर में आना और दर्शन करके यह पाठ करना चाहिये।

"अन्तर्गृहस्य यात्रेयं यथावद्यां मया कृता।
न्यूनातिरिक्ता शम्भुः प्रीयतामनया विभुः ॥१॥"

यह पढ़ कर मुक्तिमण्डप में ध्यान करते हुये विश्राम करना चाहिये।

इस महाक्षेत्र में सोलह यात्रायें हैं तिनमें कुछ प्रसिद्ध लिखी जाती हैं।

पंचतीर्थयात्रा

प्रथम चक्रपुष्करिणी में स्नान कर देव, पितृ, ब्राह्मण, साधु अतिथियों को तृप्त करे तदनन्तर, आदित्य, द्रौपदी, दण्डपाणि और महेश्वर को नमस्कार कर श्रीढुंढीराज का दर्शन करें। इसके अनन्तर ज्ञानवापी में आचमन और नन्दिकेश्वरजी को अर्चना कर तारकेश्वर और महाकालेश्वरजी की पूजा करे, इसके अनन्तर दण्डपाणिजी की पूजा करें। इसका नाम पंचतीर्थयात्रा है। इसके अनन्तर वैश्वानरीयात्रा है। और एक द्विसप्तायतनी यात्रा है। ये यात्रायें कृष्णपक्ष के प्रतिपद से या चतुर्दशी तिथि से आरम्भ की जाती हैं।

"द्विसप्तायतनीयात्रा"

मत्स्योदरीतीर्थ में स्नान कर यथाक्रम प्रणवेश्वर, त्रिविष्टप-महादेव, कृत्तिवास, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, कामेश्वर, वीरेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर, अविमुक्तेश्वर और अन्त में विश्वेश्वरजी; सभी शिवलिङ्गों का पूजन दर्शन करने से यह यात्रा समाप्त होती है।

"अष्टायतनीयात्रा"

यह यात्रा सर्वविघ्नशांत्यर्थ की जाती है। प्रतिपदा, तथा अष्टमी तिथि को यथा क्रम से निम्नलिखित देवों का दर्शन तथा पूजन करना चाहिये।

१—दक्षेश्वरजी, २—पार्वतीश्वरजी, ३—पशुपतीश्वरजी, ४—गङ्गेश्वरजी, ५—नर्मदेश्वरजी, ६—गभस्तीश्वरजी, ७—सतीश्वरजी,

और ८—तारकेश्वरजी का दर्शनादि कर यात्रा समाप्त करें। यह अष्टायतनीयात्रा कहाती है।

"एकादशायतनीयात्रा"

अग्नीध्रकुण्ड में स्नान कर—१ अग्नीध्रेश्वर, २ उर्वशीश्वर, ३ नकुलेश्वर, ४ आषाढेश्वर, ५ भारभूतीश्वरजी, ६ लांगलीश्वरजी, ७ त्रिपुरान्तकेश्वर, ८ मनःप्रकाशकेश्वर, ९ प्रीतिकेश्वर, १० मदालसेश्वर, ११ तिलतर्पणेश्वरजी, प्रभृति का दर्शन व पूजन करने से यह यात्रा पूर्ण होती है।

"गौरीयात्रा"

शुक्लपक्ष की तृतीया से यात्रा आरम्भ की जाती है। यात्रा विधि यह है कि प्रथम गोप्रेक्षतीर्थ में स्नान कर मुखनिर्मलिका में जाना चाहिये।

अनन्तर यथाक्रम से ज्येष्ठावापी में स्नानकर श्रीज्येष्ठागौरी जी की पूजा, ज्ञानवापी में स्नान सौभाग्यगौरी की अर्चना, शृङ्गारण्यतीर्थ में स्नानकर शृङ्गारगौरी की अर्चना, विशालागंगा में स्नानकर; विशालाक्षीगौरी की पूजा, ललितातीर्थ में स्नानकर ललितादेवी की अर्चना, भवानीतीर्थ में स्नानकर भवानीदेवी की अर्चना, और बिन्दुतीर्थ में स्नानकर मंगलागौरी की अर्चना करनी चाहिये। प्रतिरविवार अथवा षष्ठी या सप्तमी तिथियुक्त रविवार को 'सूर्ययात्रा' प्रतिमंगलवार को 'भैरवयात्रा' प्रतिअष्टमी या नवमी तिथि को 'चण्डीयात्रा' प्रतिचतुर्दशी को 'गणेशयात्रा' और नित्ययात्रा तो प्रतिदिन ही करनी चाहिये—

और भी एकयात्रा इस प्रकार की जाती है।

वरुणाजल में स्नान कर श्रीशैलेश्वरजी का दर्शन करना चाहिये। अनन्तर वरुणासंगम में स्नानकर श्रीसंगमेश्वर जी का

दर्शन करना चाहिये। स्वर्गलीनतीर्थ में स्नानकर स्वर्गलीनेश्वरजी का दर्शन करना चाहिये। मन्दाकिनोतीर्थ में स्नानकर मध्यमेश्वर जी का दर्शन करना चाहिये। हिरण्यगर्भतीर्थ में स्नानकर हिरण्य-गर्भेश्वर जी का दर्शन करना चाहिये। मणिकर्णिका तीर्थ में स्नान कर ईशानेश्वर जी का दर्शन करना चाहिये। गोप्रेक्षतीर्थ में स्नानकर गोप्रेक्षेश्वर जी का दर्शन करना चाहिये। कपिलाह्रद में स्नानकर वृषभध्वज का दर्शन करना चाहिये। उपशान्तकूप में स्नानकर उपशान्तेश्वर जी का दर्शन करना चाहिये। पंचचूडा-ह्रद में स्नान कर ज्येष्ठेश्वर जी का दर्शन करना चाहिये। चतुः समुद्रकूप में स्नानकर महादेव जी का दर्शन, अर्चन करना चाहिये। अनन्तर वापीजलस्पर्श, और शुक्रकूप में स्नान कर शुक्रेश्वरजी का दर्शन करना चाहिये। दण्डखाततीर्थ में स्नानकर व्याघ्रेश्वरजी का दर्शन करना चाहिये। शौनककुण्ड में स्नानकर शौनकेश्वरजी और जम्बुकेश्वरजी का दर्शन पूजन करना चाहिये। श्रीकाशीपुरीतीर्थ के अतिरिक्त एक प्रधान नगर भी है और बस्ती बहुत सघन है अतः उक्त यात्रा में विना ज्ञाता पुरुष के ठीक होना सम्भव नहीं हैं। बहुत तीर्थ अब लुप्तप्राय भी हैं।

"पंचक्रोशीयात्रा"

यह यात्रा २५ कोश की है। इसमें सम्पूर्ण काशीक्षेत्र की परिक्रमा हो जाती है। और इसी भूमिपर मरने से मुक्ति आदि जीवों को प्राप्त होती है। इसी पंचक्रोशी भूमि का लेख उक्त शिवपुराण में आया है। पंचक्रोशीयात्रा गंगास्नान कर ज्ञानवापी में आचमन और विश्वनाथ जी प्रभृति देवों का दर्शन कर वापी समीपस्थ गणेशजी का दर्शन, पूजन, प्रार्थना कर उठाई जाती है। मणिकर्णिकाघाट तक मौन होकर जाना और वहां आचमनादि कर चल देना चाहिये।

दक्षिणावर्त परिक्रमा करते हुये परिक्रमा नियमानुसार थूकना, लघुशंकादिकार्य वामहाथ की ओर करना चाहिये। पुनः पवित्र हो परिक्रमा उठानी चाहिये। मार्ग में जो तीर्थ पड़ें उन्हें करते जाना चाहिये। यह परिक्रमा पांच दिन में होती है; इसलिये पांच दिन का आवश्यक सामान साथ रखने से ठीक रहता है। माघ, फागुन, चैत्र, वैशाखादि मासों में यह परिक्रमा की जाती है। इसका बड़ा महत्त्व है। इसके करने से प्राणी सर्वपाप रहित हो जाता है। बहुत से लोग शिवरात्रि के दिन एक ही दिन में इस परिक्रमा को "जय जय महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगा" की रट लगाते हुये पूरी करते हैं। उस ध्वनि से गगनमण्डल गूँज उठता है। उस समय काशी, काशी ज्ञात होती है। इस यात्रा में चलते हुये, पहिला विश्राम श्रीकर्दमेश्वरजी में करना पड़ता है। यह काशीजी से दो-ढाई कोश पर है। यहाँ धर्मशालादि बनी हैं; उनमें उतर कर स्नानादि कृत्य कर कर्दमेश्वरजी का दर्शन, पूजन करना और भोजनादि कृत्य से निवृत्त हो विश्राम लेना चाहिये। भगवच्चर्चा करते हुये यह रात यहीं बितानी होती है।

दूसरा विश्राम—भीमचण्डी जी में करना होता है। यह विश्राम ५ कोश के अन्तर में है। यहाँ भी सब प्रकार की सुविधा है। पूर्ववत् यहां भी रात्रि बितानी चाहिये।

तीसरा विश्राम—रामेश्वरजी है। यह विश्राम भी ७ कोश पर है। यहां भी उक्त नियमों का पालन करना चाहिये।

चतुर्थ विश्राम—कपिलधारा में है। यह विश्राम भी लगभग ८ कोश पर है। यहां पर भी पूर्ववत् निवास करना चाहिये।

पंचम विश्राम—पुनः काशी जी आ जाते हैं। जहाँ से परिक्रमा उठाया है वहीं समाप्त कर देना और बाबाविश्वनाथ जी प्रभृति की नित्ययात्रा कर अपने स्थान पर लौट आते हैं। अपनी शक्ति

तथा श्रद्धानुसार बहुत से यात्रीगण ब्राह्मण भोजनादि कृत्य करते
हैं। यह यात्रा महापातकनाश करनेवाली है।

श्रीकाशीपुरी यही एक ऐसी पुरी है; जिसमें भारतभूमि के
प्रायः सर्वतीर्थ विराजमान हैं। इनकी संख्या करना कठिन है।
पर यदि यात्रियों को समय हो तो क्रमशः सभी तीर्थ आनन्द के
साथ करलेना चाहिये। और अधिक समय यदि यात्री ठहरने
में असमर्थ हों तो श्रीकाशीविश्वनाथ जी, अन्नपूर्णाजी, ढुंढीराज
गणेशजी, ज्ञानवापीस्थ देवादि अर्थात् नित्ययात्रा के देवगणों का
दर्शनकर, पंचतीर्थी का स्नान और अन्तर्गृहीयात्रा अवश्य कर
लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त, असीतीर्थ पर संगमेश्वर, जगन्नाथ-
जी, लोलार्ककुण्ड, इस तीर्थ में भाद्र की षष्ठी को स्नान का बड़ा
मेला होता है। इसका ऐसा माहात्म्य है कि इसमें स्नान से रोगादि
दूर होते हैं। तुलसी मंदिर, पुष्करतीर्थ, कुरुक्षेत्र, दुर्गाकुण्डादि
तीर्थ हैं। यहां जगज्जननी भगवती दुर्गाजी का प्रसिद्ध मन्दिर है।

श्रीदुर्गाजी बहुत विख्यात भगवती हैं; यहाँ श्रावण में
सोमवार मंगलवारादि दिनों में बड़ा मेला होता है। नवरात्रों में
तो कहना ही क्या है। यहाँ बलिदान भी होता है, यह प्रथा, और
दुर्गाकुंडादि तीर्थों में मत्स्यवधादि ये कुप्रथायें हैं; अतः यहाँ के
पंडों तथा तीर्थवासियों को इस पर ध्यान देना चाहिये। पास ही
संकटमोचन श्रीहनुमानजी हैं। ये बहुत प्रसिद्धदेव हैं। श्रीगोस्वामी
तुलसीदासजी के ये उपास्य देव हैं। यहाँ आने पर एकान्तिक
सुख जल जङ्गलादि का भी बड़ा ही आनन्द है। नागरिक सैकड़ों
जनसमूह यहाँ भांग छानने और और आनन्द लेने आते हैं।
श्रीहनुमानजी अभिमत फलदाता हैं, यहाँ मंगलवार को बहुसंख्यक
लोग दर्शन को आते हैं।

श्रीकेदारेश्वर ये बहुत प्रसिद्ध शिवलिङ्ग हैं। काशीखंड

में देखने से यह ज्ञात होता है कि केदारखंड के अधीश्वर यही हैं। इस खंड में शरीर छोड़ने से भैरवयातना भी नहीं भोगनी पड़ती है। अगस्त्यकुंड, लक्ष्मीकुंड ईश्वरगंगीगंगा, पिशाचमोचनादि बहुत से तीर्थ हैं। कपालमोचनतीर्थ, दण्डपाणि, शीतलादेवी, नवग्रहमन्दिर ये सब कालभैरवजी के आस पास ही हैं। आदिविश्वेश्वरजी, विश्वनाथजी के पास ही हैं। कालकूप भी कालभैरवजी के बहुत दूर नहीं है। यहाँ स्नानादि करने से पितृपुरुषों को सुख मिलता है। इसका जल कालोदक कहाता है। वृद्धकालेश्वरजी का भी मन्दिर कालकूप के पास ही है। मणिकर्णिकाघाट पर विष्णुभगवान् की पादुकायें हैं, यहीं तारकेश्वरजी भी हैं। गंगाकेशव श्रीललिताघाट पर हैं, ऊपर श्रीराजराजेश्वरी (ललिता) देवी विराजमान हैं। दशाश्वमेधघाट पर प्रजापति ने राजा दिवोदास के सहाय्यार्थ दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। यहाँ श्रीब्रह्माजी के द्वारा पधराये हुये दशाश्वमेधेश्वरजी तथा ब्रह्मेश्वरजी दो शिवलिंग हैं। दशहरा में यहाँ स्नान का अतीव महत्त्व है। चौसट्ठीघाट पर चतुष्षष्ठी देवी जी का मन्दिर है। यहाँ और अस्सी पर दण्डीस्वामियों के मठ हैं।

बिन्दुमाधवजी पंचगंगाघाट पर हैं। इनका असली मन्दिर तोड़कर औरंगजेब ने मसजिद बनाई है। तिलभांडेश्वरजी, शूलटंकेश्वरजी जिनके त्रिशूल पर प्रलय के समय काशी रहती है। वैद्यनाथजी, कामादेवीजी, कर्णघण्टाजी, तारादेवीजी, संकटादेवीजी प्रभृति सैकड़ों देव देवियों के मन्दिर हैं। नागकूप में श्रावण नागपंचमी को मेला लगता है। नागकूप पर और दुर्गाकुण्ड पर पंडितलोग शास्त्रार्थ करते हैं। आदिकेशवजी वरुणासंगम पर हैं। त्रिपुराभैरवीदेवीजी, इसी नाम से प्रसिद्ध

गली में हैं। यहाँ द्वादश विनायक आदि असंख्य मन्दिर हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लिख दिये गये अतः बाकी अपनी श्रद्धानुसार जहाँ तक बन सके करें। नगर बड़ा और सघन होने से कौन देव कहाँ हैं, जल्दी पता नहीं चलता। अनजान यात्री तो चकाचौंध में पड़ जाता है। यहाँ कुछ काल रहने से यात्रा बन सकती है।

कुछ समय पहिले एक यात्रा थी जो काशीकरवटयात्रा कहाती थी, उसमें यात्रीगण स्वयं बलिदान हो जाते थे, पर वह प्रथा अब बन्द हो गई। काशीकरवटेश्वर महादेव एक कुयें के भीतर विराजमान हैं। कपूर डालकर दर्शन कराये जाते हैं। काशीपुरी अति प्राचीन होने के कारण इस भूमि के नीचे, बहुत से तीर्थ तथा देवता दब गये हैं। अभी पुराने चौक में एक शिवलिंग तथा छोटा सा मन्दिर बहुत गहराई में प्रकट हुआ है; उसके ऊपर पटाव था और दूकानें थीं। अब वहाँ मन्दिर बनने की तैयारी है। इस प्रकार जहाँ तहाँ सैकड़ों तीर्थों का लुप्त होना समझना चाहिये। जिस प्रकार काशीपुरी में सर्वतीर्थ विराजमान हैं। उसी प्रकार जितने मतमतान्तर आज दिन प्रचलित हैं; उन सभों के मठ, अखाड़े आदि साम्प्रदायिक अड्डे बने हुये हैं। इस लिये महात्म्य में कहा है।

"काश्यां योगो न दुष्प्राप्यः, काश्यां मुक्तिर्न दुर्लभा। ततोऽवश्यं निषेवेत, काशी मोक्षाप्तये जनः॥" अर्थ—काशी में योग और मुक्ति दुर्लभ नहीं है, इसलिए मुक्ति के लिए मनुष्य को हठात् काशी सेवन करना चाहिये।

'ये काश्यां धर्मभूयिष्ठाः निवसन्ति मुनीश्वराः। ते तारयन्ति चात्मानं शतपूर्वान् शतापरान् ॥ २ ॥ यत्र देवनदी गंगा यत्र सा मणिकर्णिका, किं चित्रं तत्र विप्रेन्द्राः! मुक्तिप्राप्तौ तनूभृताम्

॥ ३ ॥ विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः। इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारे न पुनर्भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे मुनीश्वरो ! धर्मभूमि काशी में जो लोग निवास करते हैं, वे अपने शतपीढ़ी पूर्व-अनन्तर को तार देते हैं ॥ २ ॥ जहाँ देवनदी श्रीगंगाजी, और जहाँ मणिकर्णिका तीर्थ विद्यमान है, वहाँ मनुष्यों को मुक्ति प्राप्ति में कौन आश्चर्य है ॥ ३ ॥ धर्म-निष्ठा रहित, विषयपरायण पुरुष भी यदि इस क्षेत्र में शरीर छोड़ दे, तो पुनः उसका जन्म मरण नहीं हो सकता है ॥ ४ ॥

श्रीकाशीपुरी के अनेक नाम हैं—काशी, तीर्थराज्ञी, वाराणसी, आनन्दकानन, अपूर्वभवभूमि, रुद्रावास, महाश्मशान और स्वर्गपुरी आदि हैं।

नैषधीयचरित्र महाकाव्य के रचयिता विचक्षणचक्रचूड़ामणि महाकवि श्रीहर्षजी अपने नैषधकाव्य में लिखते हैं कि—

"वाराणसी निविशते न वसुन्धरायां तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः" अर्थात्—काशीक्षेत्र भूतल पर स्थित नहीं है किन्तु वह सदाशिवजी के त्रिशूल पर स्थित है। उस में स्थिति स्वर्ग का निवास है।

महात्मा रहीमदास एक मुसलमान फकीर हुए हैं, उन्होंने गोस्वामीतुलसीदासजी तथा उनकी रामायण की प्रशंसा में कहा है कि—

"आनन्द कानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमो तरुः, कविता मंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता" अर्थात् आनन्दकानन काशीक्षेत्र में एक चलता फिरता तुलसीवृक्ष है। जिसकी मंजरी कवितारूपी है। और उस कवितारूपी मञ्जरी पर रामरूपी भ्रमर बैठा है। इत्यादि लेख हैं।

अब तक काशीपुरी के अचल देवतावों का वर्णन किया गया,

अब चल भूसूरवृन्द तथा महात्मावों का वर्णन संक्षेप में करते हैं। यहां अच्छे अच्छे विद्वान्, साधु, सन्यासी, ब्रह्मचारी तथा अन्य वर्णाश्रमधर्मातिरिक्त मतवाले साधुगण निवास करते हैं क्योंकि यह स्थान सर्वसिद्धान्तवादियों का केन्द्र है। यात्रीगण अपनी श्रद्धानुसार दर्शन कर सकते हैं। काशीपुरी की सबसे अद्भुत बात तो यह है कि संस्कृतविद्या का जैसा केन्द्र यह स्थान है वैसा भूपृष्ठ पर कोई दूसरा नहीं है। यहाँ एक-एक विषय के बड़े धुरन्धर विद्वान् इस समय भी विद्यमान हैं। जब कोई श्रीमान् पुरुष काशीयात्रा के लिए जाता है; तब विद्वानों की एक सभा करता है; उसमें जब सब पण्डितवर्ग एकत्र होता है, तब कुछ शास्त्रविचार होता है; उसको सुनकर लोग कृतार्थ होते हुए संशय रहित होते हैं। जो प्रश्न उनके मन में होता है; उसे शास्त्रों के द्वारा तरह-तरह के समाधान लोग देते हैं। और अपनी प्राचीन वैदिकसंस्कृत को जागृत करते रहते हैं। जब किसी धार्मिक विषय में सन्देह उपस्थित होता है। तब उसे काशी के विद्वान् ही अपनी व्यवस्था द्वारा दूर करते हैं। वही समस्त वैदिकसंसार को मान्य होता है; आज दिन भी उस व्यवस्था का विरोधी दूसरे स्थान में नहीं पाया जाता है। वेदों दर्शनों और पुराणादि सभी विषयों के गूढ़ मर्मज्ञ काशी जैसे दूसरे स्थानों में नहीं हैं। यह सौभाग्य श्रीविश्वनाथजी की कृपा से काशीपुरी को ही है। श्रीकाशीपुरी शास्त्रों में अजेय है। आज तक बड़े-बड़े विद्वान् काशीपुरी आये, पर यहाँ से हार करके ही गए, कोई जीत कर नहीं गया, यह विश्वनाथजी का जागृत प्रभाव है। काशीपुरी का सबसे बड़ा नाम तथा महत्त्व इन चलदेवताओं (विद्वानों) द्वारा है। इस प्रकार का शास्त्रविषयक आनन्द लेकर श्रीमान् तीर्थयात्री विद्वानों को पूजा तथा दक्षिणा प्रदानादि द्वारा संतुष्ट

कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर अपने जीवन तथा यात्रा को सफल मानते हैं। इस प्रकार करने में अशक्त, धनहीन यात्री, केवल दर्शन-मात्र से ही कृतार्थ होते हैं। अतः प्रधान विद्वानों तथा महात्मावों के दर्शन करने का ऐसा सुयोग्य अवसर तथा स्थान दूसरा न मिलने से दर्शन अवश्य करना चाहिए।

यहाँ संस्कृतविद्यालय बहुत से हैं तिनमें कई एक शालायें बड़ी-बड़ी हैं। सबसे बड़ी संस्था काशीहिन्दूविश्वविद्यालय है। यह संस्था भारत में अपनी बराबरी नहीं रखती, यह कहना अनुचित न होगा कि अपने विस्तार में यह संस्था सारे संसार में अपनी समानता नहीं रखती है। छात्र संख्या तथा धनादि में अधिक योरुप में दो चार संस्थायें हों भी, पर इसमें भी आठ दश हजार छात्र शिक्षा सदैव पाते हैं। समस्त संसार में चतुर्थ संख्या इसी की है। २२ मील की सड़कें इसमें बनी हुई हैं। बाईस या तेईस ग्राम इस भूमि से निकाले गये थे। इतनी भूमि पर यह संस्था अपना विस्तार रखती है। बड़े-बड़े कालिज बने हुए ऐसे सुन्दर ज्ञान होते हैं कि जिनको देख मन मुग्ध हो जाता है। कालिज एक कतार से बने हुए हैं। और छात्रावास दूसरी पंक्ति पर हैं। तिसके पीछे प्रोफेसरों के रहने के बंगले आदि हैं। सड़कों पर तरह तरह के रंग विरंगे फूलों की तथा अन्य वृक्षों की बराबर पंक्तियाँ बहुत ही भली ज्ञात होती हैं। यहाँ लड़कियों की भी शिक्षा तथा रहने आदि का प्रबन्ध है। यहाँ शिक्षा प्राच्य, और पाश्चात्य दो भागों में विभक्त है।

प्राच्यविद्याविभाग में अपने संस्कृत के वेदवेदाङ्गों का पाठन होता है। और पाश्चात्यविद्याविभाग में पाश्चात्य सर्वविद्या तथा कलावों का अध्यापन होता है। दोनों विभागों में चुने हुए विद्वान् रक्खे गये हैं। जो भारत ही में नहीं बल्कि संसार के

इने गिने विद्वानों में हैं। बीच में एक विश्वनाथजी का मन्दिर बन रहा है जिसकी बड़ी लागत की स्वीकृति हुई है। इस मन्दिर में बहुत सी बातें ऐसी होंगी, जो भारत में दूसरे में न पाई जाँयगी। यह सब कृति श्रीमन्महामनापंडितमदनमोहन मालवीयजी की अमरकीर्ति का एक समुज्वल स्तम्भभूत है। श्रीमालवीयजी का विचार तो बहुत ही ऊँचा था वे सदैव ही इस चाहना तथा उद्योग में रहते थे कि इस संस्था की बराबरी की संस्था संसार में दूसरी न हो, बहुत अंशों में वे सफल भी हो चुके हैं। सड़कों के दोनों ओर गंगाजी से एक नहर भी निकालने का विचार हो रहा है। यदि यह कार्य हो गया तो उस समय विश्वविद्यालय की अनुपम ही शोभा हो जायगी। यहाँ का आयुर्वेदविभाग बहुत ही अच्छा है; और औषधियाँ यहाँ बहुत अच्छी बनाकर देशों को भेजी जाती हैं। और भी यहाँ बहुत द्रष्टव्य बातें हैं। अतः यात्रियों को इस संस्था को अवश्य देखना चाहिये।

दूसरी बड़ी संस्था गवर्नमेन्ट क्वींसकालेज (संस्कृतकालेजादि) हैं। इसमें भी संस्कृत की बहुत उच्चकोटि की पढ़ाई होती है, और परीक्षा भी भारत प्रसिद्ध होती है। और भी बहुत सी बड़ी-बड़ी पाठशालायें हैं। जिनमें जाकर यात्रियों को दर्शनलाभ तथा विद्वानों का सत्संग करना चाहिये।

काशी के उस पार रामनगर महाराजबनारस के रहने की राजधानी है। रामनगर की रामलीला भारत प्रसिद्ध है। यह रामलीला आश्विनमास भर होती है। इस समय यात्रा करनेवाले यात्रियों को यह लाभ भी मिल सकता है। इत्यादि सब बातों को देखते हुये यात्रा समाप्त कर बाबाविश्वनाथजी से आज्ञा मांग प्रयाण करना चाहिये।

८–त्र्यम्बकं गौतमीतटे

अष्टम ज्योतिर्लिङ्गश्रीत्र्यम्बकेश्वर-प्रादुर्भाव

भाषार्थः—श्रीसूतजी बोले, कि पहिले ऋषियों में श्रेष्ठ गौतम नामक महर्षि जिनकी स्त्री परमसाध्वीअहल्या लोक में प्रसिद्ध हुई ॥१॥ दक्षिण दिशा में ब्रह्मगिरि नामक पर्वत के निकट गौतम-महर्षि अहल्या के साथ तप किया करते थे ॥२॥ किसी समय सबको दुःख देने वाली सौ वर्ष की अनावृष्टि (अवर्षण) हुआ इससे लोग सब बड़े दुःखी हुये ॥ ३ ॥ हे ऋषियो ! यह देखकर ऋषिलोग प्राणायाम कर समाधिस्थ हुये और कोई २ ध्यान द्वारा उस भयंकर काल को बिताने लगे ॥४॥ गौमतमहर्षि भी प्राणायाम परायण होकर वरुणदेवता के लिये परमशुभ तप छः मास तक किया ॥५॥ तब वरुणदेवता गौतमजी को वर प्रदान करने आये और बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ ! वर माँगो हम प्रसन्न हैं ॥ ६ ॥ तब गौतमजी ने उनसे वृष्टि होना माँगा। तब वरुणदेवता बोले कि हम देवाज्ञा किसी प्रकार उल्लङ्घन नहीं कर सकते ॥ ७ ॥ आप तो विज्ञ हो, दूसरी वस्तु माँगो वह हम कर देवें, तब गौतमजी बोले यदि आप हमारे ऊपर कृपा करेंगे तो नित्यफल देने वाला मेघजल, हे महाराज हमको दीजिये। अब इस प्रकार गौतममहर्षि ने प्रार्थना किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तब वरुण देवता बोले कि आप एक गर्त (गड्ढा) कीजिये। तब गौतमजी ने गड्ढा बनाया और वरुणदेवता ने उसे जल से भर दिया ॥ १० ॥ और बोले कि यह तीर्थ स्वरूप आपके लिये अक्षयजल वाला होय और तुम्हारे ही नाम से विख्यात यह क्षेत्र भी होगा ॥ ११ ॥ यहाँ दिया हुआ, हवन किया हुआ, जप और श्राद्ध किया हुआ अक्षय होय, ऐसा कह वरुण देवता गौतममहर्षि से स्तुत हो अन्तर्धान हो गये ॥ १२ ॥ तब गौतम

महर्षि बड़ा दुर्लभ जल पाकर नित्य, नैमित्तिक कर्म विधानपूर्वक करने लगे ॥ १३ ॥ धान, यव, नीवारादि अनेक प्रकार के धान्य हवन के लिये बोवाया ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! नाना प्रकार के वृक्ष, पुष्प, फल, और अनेक प्रकार के धान्य वहाँ हुये ॥ १५ ॥ गौतमजी की अनुमति से ऋषि, पशु, और पक्षी आदि सुख के लिये वहाँ आये ॥ १६ ॥ और ऋषिलोग अपने पुत्र तथा शिष्यों के साथ उस वन में शुभकर्मपरायण हो निवास करने लगे ॥१७॥ और कालक्षेप के लिये उन लोगों ने भी धान्यादि बो दिये किसी समय यह अवसर आया कि गौतमजीने अपने शिष्यों को जल लेने भेजा, उन शिष्यों को जल के समीप गया देख, ऋषिपत्नियों ने निषेध किया, और बोलीं कि हम जल प्रथम ग्रहण करेंगी, तुम लोग दूर रहो । पश्चात् जल ग्रहण कर सकते हो, ऐसा कह तिरस्कार किया, तब लौट कर शिष्यों ने ऋषिपत्नी अहल्याजी से सब वृतान्त कहा ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ अहल्याजी ने अपने शिष्यों को साथ ले उन ऋषिपत्नियों को शांति दे स्वयं जल लाकर श्रीगौतमजी को जल दिया ॥ २१ ॥ हे ऋषियो ! तब गौतमजीने उस जल से अपना नित्य कृत्य किया । परन्तु उन ऋषिपत्नियों ने बड़े क्रोध से अहल्याजी का बड़ा तिरस्कार किया ॥२२॥ और अपने २ स्वामियों के सामने सब बात उलटी ही निवेदन की, और कहा कि हे स्वामिन् ! यह अहल्या नाम की मनुष्या (मानवी) हम लोगों का सदैव तिरस्कार करती है ॥ २३ ॥ झुंठाई, साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लोभपरायणता, अपवित्रता, और निर्दयता स्त्रियों के ये स्वाभाविक दोष हैं । और अपने पतियों से कहने लगीं कि आप लोगों का जीवनधिक् है तप का भी क्या फल है, और हम लोगों के जीवन को भी धिक्कार है जो अहल्या सदैव कोप करती है ॥२४॥२५॥ इस प्रकार अपनी पत्नियों का वचन सुन गम्भीरता को अवलम्बन

कर बोले कि अहल्या का वचन, ऐसा वचन नहीं हो सकता और यदि होय भी तो ठीक ही कहती है, अन्यथा हम लोगों का जीवन ही कैसे हो सकता ॥ यदि हम लोग अहल्या को कुत्सित वचन कहेंगे तो हम सब कृतघ्न कहायेंगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ जिसके द्वारा हम लोग पालित हुये और जीते हैं, उसे कैसे कुछ कहें, परन्तु वे ऋषिपत्नियाँ सदैव ही परस्पर अहल्या को क्लेश देने के लिये बद्धपरिकर हो गईं ॥ २८ ॥ अहल्या सदैव उनके प्रति कोमल विनयपूर्वक ही वचन कहती थी। किसी समय वन कार्य से गये हुये ऋषिलोगों ने स्वयं जाकर गौतमजी से अहल्या के द्वारा दिया हुआ दुःख अपनी पत्नियों का कहा, दुःखयुक्त हो गौतम के सामने दुःख सुनाने पर जब गौतमजी कुछ न बोले तब उन ऋषियों ने अपनी पत्नियों का कहा हुआ वचन सत्य माना, और भावि के प्रसंगवश विचार में तत्पर हुये ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सूतजी बोले कि—हे महर्षियो ! इस प्रकार उन ऋषियों ने विचार कर वहाँ गणपति का पूजन और उपासना की ॥ १ ॥ दूर्वादल और अनेककमल, तण्डुल, सिन्दूर, चन्दन, धूप, आरती और तरह २ के लड्डुवों से श्रीगणेशजी का पूजन किया, तब गणेशजी प्रसन्न होकर बोले ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीगणेशजी बोले— कि हम प्रसन्न हैं तुम लोग वर मांगो, तुम्हारा क्या कार्य है उसे हम करें, श्रीगणेशजी का ऐसा वचन सुन कर ऋषि लोग बोले ॥ ४ ॥ कि हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और हम लोगों को वरदान देना चाहते हैं तो इस प्रकार कीजिये कि गौतम ऋषियों द्वारा तिरस्कृत हो इस आश्रम से निकाले जाँय, जब इस प्रकार की प्रार्थना सुना तब हँस कर बोले कि हे श्रेष्ठऋषियो, सुनो, आप लोग ठीक नहीं कर रहे हो। बिना अपराध के यदि आप लोग गौतम पर क्रोध करते हो तो हानि है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ प्रथम

जिसने उपकार किया है, उसको दुःख नहीं देना चाहिये, यदि दुःख देते हैं तो नाश होता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार वचन सुनकर भी बुद्धि विभ्रम को प्राप्त हुये ऋषियों ने वही वरदान माँगा ॥९॥ और बोले कि हे स्वामिन ! वही कीजिये दूसरा प्रकार हम नहीं चाहते, जब ऋषियों ने ऐसा कहा तब गणेशजी बोले, ॥ १० ॥ कि असाधु कभी साधुता को नहीं प्राप्त होता, और साधु असाधुता को नहीं प्राप्त होता यह निश्चित है ॥ ११ ॥ दुष्टों के योग से असाधुपुरुष, साधुपुरुष को दुःख देते हैं, पर आगे सुख की वृद्धि के लिये साधुपुरुष उसे सुख ही मानता है ॥ १२ ॥ और साधुपुरुष उस दुःखदाता पुरुष को सुख ही देता है। जब तुम लोगों को नाश करनेवाला दुःख उत्पन्न हुआ था, तब गौतम महर्षि ने आप लोगों को सुख दिया। अब आप लोग उन्हीं को दुःख देना चाहते हो ॥ १३॥१४॥ हे ऋषियो ! यह सर्वथा अयुक्त आप लोगों का कार्य लोक में है। पर आप लोग स्त्रीबल से मोहित हुये निश्चित यही करोगे ॥१५॥ परन्तु यह गौतम के लिये अत्यन्त हितकर होगा इसमें संदेह नहीं है। और फिर भी ऋषियों में श्रेष्ठ गौतम आप लोगों को निश्चित सुख ही प्रदान करेंगे ॥१६॥ यद्यपि इस प्रकार गणेशजी ने बहुत कुछ कहा पर उन लोगों ने न माना। तब भक्तपराधीन होने से जो श्रीगणेशजी ने किया वह सुनो ॥ १७ ॥ गौतममहर्षि ने इस ऋषियो के दुष्ट कृत्य को नहीं जाना, आनन्दयुक्त मन से वे अपना नित्य कर्म करते थे ॥ १८ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकादि ऋषियो ! इसके अनन्तर जो हुआ वह सुनो। गौतमजी के खेत में धान और यव बोये हुये थे ॥ १९ ॥ गणेश जी उसमें बड़ी दुबली गौ होकर गये और धान और यवों को भक्षण किया ॥ २० ॥ दैवयोग से उसी समय गौतमजी आ गये, दयालु गौतमजी ने अपने खेत में उस गौ को देखा ॥ २१ ॥

तब उन्होंने एक तृण लेकर उसे वारण किया, ज्योंही तृण छू गया कि वह गौ पृथिवी पर गिर कर मर गई। उसी क्षण गौतमजी ने और छिपे हुये उन ऋषियों, और उनकी स्त्रियों ने उसे मरते देखा ॥ २२ ॥ २३ ॥ सब लोग बोल पड़े कि गौतम ने यह क्या किया, गौतमजी और अहल्याजी यह देखकर स्वयं विस्मय को प्राप्त हुये ॥ २४ ॥ गौतमजी कहने लगे कि क्या हो गया, भगवान् क्यों अप्रसन्न हो गये ? अब क्या करें, कह जाँय, हत्या उपस्थित हो गई ॥ २५ ॥ इसी समय वे ब्राह्मण गौतमजी का तिरस्कार करने लगे और उनकी स्त्रियों ने अहल्या को अपने दुर्वचनों से पीड़ा पहुँचाया ॥ २६ ॥ ऋषिपत्नियाँ बोलीं,—कि हे ऋषिश्रेष्ठ ! तुम्हारे ज्ञान, तपस्या, विद्वत्ता, होम और त्रिकाल में जो कर्म करते हो सबको धिक्कार है ॥ २७ ॥ ऋषिगण, उनकी स्त्रियाँ. शिष्यगण, ऋषिपुत्र सभी उनका तिरस्कार करने लगे और जाव, जाव इस आश्रम से ऐसा कहने लगे ॥ २८ ॥ अब मुख नहीं दिखाना, देखने से हमारे कर्म में न्यूनता होगी, जब तक तुम आश्रम के समीप में रहोगे तब तक देवता और पितृगण हमारा दिया हुआ कुछ नहीं ग्रहण करेंगे ॥ २९ ॥ इसलिये अपने परिवार सहित तुम शीघ्र चले जाव, ऐसा कहकर उनलोगों ने गौतमजी को पत्थरों से मारा ॥ ३० ॥ गौतमजी बोले कि हा हा क्या क्या न होगा, हे ऋषिश्रेष्ठो ! आपलोग ठीक कहते हैं, हम जाते हैं ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर गौतमजी उस आश्रम को छोड़ निकल पड़े, एक कोश जाकर उन ऋषियों की अनुमति से वहाँ आश्रम बनाया ॥ ३२ ॥ यावत् तुमको हत्यारूप अभिशाप है तब तक तुम कुछ नहीं कर सकते, देव-पितृकार्य में तुम्हारा अधिकार नहीं है ॥ ३३ ॥ कभी जब गौतमजी मार्ग में दिखाई पड़ जाते थे, तब ऋषि पत्नियाँ मुख ढांककर माया करती हुई वहाँ से निकल जाती थीं ॥ ३४ ॥ तब गौतमजी

ने अत्यन्त दुःख प्राप्त किया और १५ दिन किसी प्रकार बिताकर ऋषियों से प्रार्थना किया ।। ३५ ।। गौतमजी ने ऋषियों से कहा, कि आपलोग हमारे ऊपर दया करें और जो कुछ हमारे पाप निवृत्त्यर्थ बतावेंगे वह हम करेंगे। जिस प्रकार हमारा पाप दूर हो वह कहिये ।। ३६ ।। ऋषिगण बोले—कि सम्पूर्ण पृथिवी पर भ्रमण करते हुये अपने पाप को प्रकाशित करो, पुनः यहीं आकर मासव्रत करो ॥ ३७ ॥ और एक सौ एक ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा करके शुद्धि को प्राप्त कर सकते हो ।। ३८ ।। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो गंगा को लाकर स्नान करो, एककोटि पार्थिवशिव-लिंगों का पूजन और उसके अनन्तर गंगास्नानकर पवित्र हो जावोगे ।। ऐसा ऋषियों का जो कथन था, उसे गौतमजी ने स्वीकार किया ।। ३९ ।। ४० ।। पार्थिव पूजन और ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा आप लोगों की आज्ञा से करेंगे, ऐसा कह ऋषिवर्य गौतमजी ने गिरि की प्रदक्षिणा की, और ऋषियों की आज्ञानुसार पार्थिवों का पूजन आरम्भ किया, श्रीशंकरजी का ध्यान विधि विधान से करने लगे ।।४१।।४२।।४३।। श्रीअहल्याजी भी सब युक्तकार्य करती थीं, तब शिष्य प्रशिष्य उन दोनों की सेवा करते थे ।। ४४ ।। सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! ऐसा करने से किसी समय शङ्करजी प्रसन्न हो गये और कैलाश से पार्वतीजी और अपने गणों के साथ आकर गौतमजी से बोले कि हे महर्षिवर्य, जो चाहते हो वर माँगो, तब गौतमजी ने श्रीशंकरजी को नमस्कार कर स्तुति किया ।। ४५ ।। ।। ४६ ।। नमस्कार कर हाथ जोड़ स्थित हो गौतमजी बोले कि हे देव, हमको पापरहित बनावो, तब श्रीशंकरजी बोले ।। ४७ ।। कि हे मुनीश्वर ! तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो और सदा ही निष्पाप हो, इन दुष्टऋषियों द्वारा तुम छले गये हो ।। ४८ ।। शिवजी बोले कि हे मुनीश्वर ! तुम्हारे ही दर्शनों से लोग निष्पाप होते हैं, इन

दुष्टऋषियों की कृतघ्नता की शुद्धि किसी उपाय द्वारा नहीं है ॥ ४९ ॥ हमारे दर्शन से जो कुछ बचा खुचा पाप था वह दूर हो गया, ऐसा कह श्रीशंकरजी ने गौतम को उन दुष्ट ऋषियों का कर्तव्य बताया ॥५०॥ श्रीशंकरजी से सब वृत्तान्त जानकर गौतमजी बड़े विस्मित हुये, और बोले कि प्रभो! उन लोगों ने बड़ा ही उपकार किया ॥ ५१ ॥ यदि वे लोग ऐसा न करते तो आपका दर्शन किस प्रकार होता, वे ऋषिलोग धन्य हैं हमारे लिये बड़ा अच्छा किया ॥५२॥ ऐसा वचन सुनकर श्रीशंकरजी पुनः प्रसन्न हो गये और बोले कि हे ऋषियों में श्रेष्ठ गौतमजी तुम धन्य हो अब कोई श्रेष्ठ वर मांगो ॥ ५३ ॥ गौतमजी बोले कि हे नाथ! यद्यपि आपका कहना सर्वथा सत्य है तथापि पाँच मनुष्य जिसको कहते हैं वह अन्यथा नहीं लोक में समझा जाता है; जो हुआ सो हुआ; यदि आप हे प्रभो हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे गंगाजी दीजिये; तब श्रीशंकरजी पृथिवी और स्वर्ग का सार निकालकर जो रक्खा था, विवाह समय में ब्रह्माजी को दे डाला था, पर थोड़ा सा शेष बचा था; वह श्रीगौतम को दिया और अपनी भक्तवत्सलता और गौतम महात्मा की कीर्ति को लोक में विख्यात किया ॥५४॥५५॥५६॥५७॥ वह गंगाजल उसी समय स्त्रीरूप हो गया, तब गौतमजी ने उनकी स्तुतिकर नमस्कार किया ॥५८॥ गौतमजी बोले कि हे गंगे! तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो। तुमने सर्वभुवनों को पवित्र कर दिया है अब निश्चयरूप से नरक में गिरते मुझे पवित्र करो ॥५९॥ श्रीशङ्करजी बोले कि हे गंगाजी हमारी आज्ञा से तुम महर्षि को पवित्र करो, ऐसा श्रीशङ्करजी का और गौतमजी का वचन सुनकर श्रीगंगाजी पुनः बोलीं कि महर्षि को पवित्र कर हम सपरिवारशङ्करजी के पास चली जायँगी। हे श्रेष्ठ-ऋषियो! यह सत्यवचन समझो, गंगाजी के ऐसे कहने पर

भगवान् श्रीशङ्करजी बोले ॥६०॥६१॥६२॥ कि हे गंगे ! तुम जब तक कलि आवे तब तक वहीं रहो, वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग तक तुम यहीं लोकहित के लिये रहो, कुछ रुक कर गंगाजी पुनः सुन्दर वाक्य बोलीं ॥६३॥६४॥ कि यदि हमारा माहात्म्य सब से अधिक होवे, तब हे मुनीश्वर ! हम ऐसा करेंगी, और दूसरी बात यह है कि इन छली, दाम्भिक ऋषियों को पवित्र करने में हम समर्थ नहीं हैं। इनके आते ही हम अन्तर्धान हो जायँगी। और श्रीशङ्करजी सुन्दर शरीर से गणों और गिरजा के साथ हमारे समीप यदि स्थित होवें तब हम यहाँ रहेंगी। गंगाजी का यह वचन सुन श्रीशङ्करजी बोले कि हे देवि ! तुम धन्य हो, तुम सुनो हम तुमसे भिन्न कभी नहीं हैं, तब भी हम यहाँ स्थित होते हैं। तुम यहाँ स्थित हो जावो, ऐसा श्रीशङ्करजी का वचन सुन गंगाजी बहुत प्रसन्न हुईं, और उस वचन का बड़ा आदर किया ॥६५॥६६॥६७॥६८॥६९॥

सूतजी बोले कि हे शौनकादि ऋषियो !—इसी समय प्राचीन ऋषि, देवगण, सुन्दरतीर्थ और अनेक नाना भाँति के क्षेत्र सब आये और गौतम, गंगा और शङ्करजी के लिये "जय-जय" कहते हुये बड़े आदरपूर्वक पूजन किया ॥७०॥७१॥ श्रीगंगाजी और श्रीशङ्करजी प्रसन्न होकर बोले कि हे श्रेष्ठऋषिगणो ! वरदान मांगो; हम तुम्हारी प्रसन्नता के लिये देंगे ॥७२॥ ऋषिलोग बोले कि—हे देवेश और हे सरिद्वरे गङ्गे ! यदि तुम प्रसन्न हो तो सज्जनों की प्रिय कामना से यहीं स्थित हो जाइये ॥७३॥ श्रीगंगाजी बोलीं कि—आप सब भी यहाँ स्थित हों, हमी अकेले क्यों ? तब सब देवगण बोले—कि जब सिंहराशि में सुरश्रेष्ठ वृहस्पतिजी होंगे ॥७४॥ तब हे गंगाजी हम सब तुमको आ प्राप्त होंगे। हे देवि। आप श्रीशङ्करजी के साथ स्थित होवें ॥७५॥ जब

तक सिंहराशि के गुरु रहेंगे तब तक हम लोग स्थित रहेंगे। तुम्हारे में त्रिकालस्नान कर श्रीशङ्करजी का दर्शन करके पापों का त्याग करेंगे, इसमें कोई विचार न करना, इस प्रकार उन सब देव, ऋषियों और गौतममहर्षि द्वारा प्रार्थित हो, श्रीशङ्करजी, और गंगाजी स्थित हुईं। उसी दिन से लेकर जब सिंहराशि के बृहस्पति होते हैं ॥७६॥७७॥७८॥ तब सब तीर्थ, क्षेत्र, देवता आते हैं। प्रथम गोमती जाकर अनन्तर गोदावरी जाना चाहिये ॥७९॥ पुनः गोमती जाकर मनुष्य हत्यादि पापों से भी छूट जाते हैं। श्रीशङ्करजी का यह ज्योतिर्लिङ्ग महापातक नाश करनेवाला गौतमीगंगा के तट पर ज्योतिर्लिङ्गों में श्रेष्ठ "त्र्यम्बकेश्वर" इस नाम से विख्यात हुआ ॥८०॥८१॥

शौनकादि ऋषिगण बोले कि हे व्यासशिष्य सूतजी! जिन ऋषियों ने गौतम के लिये दुष्टता का व्यवहार किया था, उनका क्या वृत्तान्त हुआ, कहिये ॥८२॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो! देवतावों और गौतमजी की प्रार्थनावश श्रीगंगाजी ब्रह्मगिरि से नीचे उतरीं, ऊदम्बर की शाखा से प्रवाह निकल पड़ा, तब गंगाजी में ऋषिश्रेष्ठ गौतमजी ने स्नान किया ॥८३॥८४॥ जहां से श्रीगंगाजी निकलीं उस स्थान का नाम गंगाद्वार प्रसिद्ध हुआ। इसके अनन्तर उस क्षेत्र में गौतमजी के स्पर्धी महर्षि भी स्नान के लिये आये, उनको देख श्रीगंगाजी अन्तर्धान हो गईं। श्रीगौतमजी निषेध करते ही रहे कि हे गंगाजी! ऐसा न करो पर गंगाजी अन्तर्धान हो गईं ॥८५॥८६॥ श्रीगंगाजी बोली कि—ये अतिशय दुष्ट ऋषि हैं, इनको हम नहीं देखना चाहतीं, ये कृतघ्न, द्रोही, अकिंचित्कर, और मानी हैं ॥८७॥ विना विचारे करनेवाले, ये पाखण्डी त्याज्य हैं, तथापि हे ऋषियों में श्रेष्ठ गौतमजी! ये लोग यदि स्वसंग्रहार्थ प्रायश्चित्त करें; अर्थात् १०१ बार

ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा करें तो इन दुष्टों को स्नानादि का अधिकार मिल सकता है ॥८८॥८९॥

ऐसा श्री गंगाजी का वचन सुन उन ऋषियों ने उसी भाँति किया, ऐसा करने पर श्री गौतमजी ने गंगाजी की आज्ञा से गंगा द्वार के नीचे 'कुशावर्त' नामक तीर्थ बनाया, वहाँ श्रीगंगाजी उत्पन्न हो गईं। वह कुशावर्त तीर्थ बड़ा उत्तम तीर्थ हुआ, उस विख्यात तीर्थ में स्नान करनेवाला पुरुष मोक्ष का भागी होता है ॥९०॥९१॥९२॥ वहीं पर ऋषिगणों ने दिव्य स्तुति बार बार श्रीगंगाजी की कर स्नान किया और ऋषिपत्नियों ने अहल्याजी को आगे कर स्नान किया, तब उन लोगों ने अपने को कृतार्थ माना, श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी का दर्शन कर परम आनन्द को प्राप्त हुये ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ गंगाद्वार, कुशावर्त और त्र्यम्बकेश्वरजी के समीप कोटितीर्थ में स्नान कर प्राणी गर्भ में नहीं जाता है ॥९५॥

श्रीगंगाजी को ही देखकर पञ्चवटी में साक्षात् हरि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने संसार को पवित्र करने के लिये निवास किया था ॥ ९६ ॥ प्रथम तो श्रीगंगाजी पुनः श्रीविष्णुदेव अर्थात् भगवान् श्रीरामजी जहाँ स्थित हैं, वहाँ फिर क्या दुर्लभ है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त वाराणसी निवास का जो फल है वह फल एक याम (प्रहर) निवास से ही प्राप्त हो जाता है। प्रथम श्रीरघुनाथजी का तदनन्तर लोककल्याण कर त्र्यम्बकेश्वरजी और उस गंगाद्वार को देख कौन पाप ऐसा है जो न छूट जाय। जो लोग स्नान करते हैं वे लोग वहीं जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥९७॥९८॥९९॥ सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! महर्षि गौतमजी तथा अन्य महर्षि परस्पर मिलकर श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी का माहात्म्य कथन किया करते थे जिसको सुन कर मनुष्य सर्व पापों से छूट जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥१००॥१०१॥१०२॥

अष्टम ज्योतिर्लिङ्गश्रीत्र्यम्बकेश्वरजी का वर्णन

श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी का दर्शन नासिक (पञ्चवटी) से १८ मील पर है। लारी (मोटर) जाया करती है, किराया ।।) आठ आना से अधिक नहीं है। पैदल भी लोग जाते हैं। मार्ग अतीव रम्य है, प्राकृतिक शोभा निरीक्षण करते हुये जाने में मार्गश्रम ज्ञात नहीं होता। गौतमीगंगाजी की उत्पत्ति ब्रह्मगिरि से हुई है, इसी गौतमीगंगा को गोदावरी भी कहते हैं। ये ८९८ मील भूतल पर बहती हुई पूर्वीय समुद्रालिङ्गन करती हैं। बस इसी गौतमीगंगा के उद्‌गम स्थान पर श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी विराजमान हैं। इसीलिये "त्र्यम्बकं गौतमी तटे" कहा गया है। श्रीगौतमीगंगाजी की उत्पत्ति, और श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई है; वह विदित किया जा चुका है। श्रीगोदावरीजी बड़ी पुनीत नदियों में एक हैं। जब यात्रिगण श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी की शरण में पहुँच जाते हैं तब उन्हें यह उचित है कि किसी धर्मशाला में अपनी स्थिति कर लेंवे। यहाँ कई धर्मशालायें हैं, अथवा पण्डों के स्थानों में भी स्थिति कर सकते हैं। अपनी स्थिति ठीक कर प्रथम कुशावर्ततीर्थ में स्नान, तर्पण, श्राद्धादि (पिण्डप्रदान आदि) करना चाहिये। यहाँ पिण्ड कराने वाले लोग मिल जाते हैं। कुशावर्ततीर्थ का बड़ा महत्त्व है। प्रथम इसके विषय में एक श्लोक शिवपुराण में ऐसा लिखा जा चुका है कि—"गंगाद्वारे, कुशावर्ते, शिवस्य त्र्यम्बकस्य च। निकटे कोटि तीर्थे च स्नात्वा-गर्भं न गच्छति" अर्थात् गंगाद्वार, कुशावर्त, और श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी के निकट वर्तमान कोटितीर्थ में स्नान करने से गर्भवास पुनः नहीं होता। कुशावर्ततीर्थ, उदुम्बर की शाखा के पास से निकले गंगाप्रवाह के नीचे है. जैसे—"कुशावर्त

तदाचक्रे गंगाद्वारादधोगतम्" और जहाँ से श्रीगंगाजी का प्रवाह निकला है, उस तीर्थ का नाम "गङ्गाद्वार" है। जब सिंह-राशि पर बृहस्पतिजी होते हैं, तब श्रीगंगाद्वार और कुशावर्त तीर्थ में प्रायः सभी तीर्थ आते हैं और जब तक सुरगुरु सिंहस्थ रहते हैं तब तक निवास करते हैं। इसलिये ऐसे अवसर पर इस तीर्थ में स्नान, पिण्डादिदान का बड़ा महत्त्व है। गंगाद्वार-तीर्थ ब्रह्मगिरिपर्वत पर श्रीगौतमीगंगाजी का उद्गम स्थान ही माना जाता है, यह तीर्थ श्रीगौतममहर्षि के स्नानार्थ श्रीगंगाजी ने प्रकट किया था। और कुशावर्ततीर्थ इस प्रकार उत्पन्न हुआ जब गौतमजी ने श्रीगंगाजी को श्रीशंकरजी की असीम कृपा से प्राप्त किया, तब गौतमजी को गोहत्या लगानेवाले दुष्टमहर्षिगण भी स्नानार्थ आये। उस समय श्रीगंगाजी लुप्त हो गईं तब श्रीगौतमजी की अतीव प्रार्थनावश १०१ ब्रह्मगिरि की परिक्रमारूप प्रायश्चित करने पर श्रीगंगाजी ने गौतमजी से यह कहा कि तीर्थस्थल बनाओ, उस समय गौतमजी ने एक कुश को लेकर एक घेरा बनाया था, उसी में श्रीगंगाजी प्रकट हुईं इसलिये वह कुशावर्ततीर्थ कहाया; बस इसी कुशावर्त में ऋषियों और ऋषि-पत्नियों ने श्रीअहल्याजी को आगे कर स्नान किया था। ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा का भी शास्त्र में बड़ा महत्त्व कहा है। पर आज कल ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा प्रायः लोग नहीं करते हैं। यहां प्रथम यात्रियों को इस प्रकार करना चाहिये—

प्रथमदिनकार्य—श्रीकुशावर्ततीर्थ में सब कृत्य सहित स्नानादि कर श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी का दर्शन करना चाहिये। कुशावर्ततीर्थ में चारों ओर पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं जल बड़ा ही निर्मल भरा रहता है। तीर्थ में घुसकर स्नानादि करने की मनाई है। बाहर जल लाकर स्नान करना पड़ता है। तीर्थ पर चारों

ओर देवमन्दिर बने हैं; दर्शन कर लेना चाहिये। अनन्तर पूजन सामग्री ठीक कर जलादि ले श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी के दर्शनों को जाना चाहिये। जब मन्दिर में जायँगे, तब विशालद्वार तथा प्रोन्नत प्राचीन मंदिर जो अच्छे विस्तार में बना है, देखते ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। दक्षिणावर्त लेते हुये श्रीनन्दिकेश्वरजी जो बड़े ही भव्य प्राचीन एक छोटे-से मन्दिर में पधरे हैं, मिलेंगे; उनका दर्शनादि कर कुछ सीढ़ी ऊपर चढ़ मन्दिर के बाहरी सभामन्दिर में पहुँच जाते हैं। यहाँ पर बहुत से पाषाण स्तम्भ हैं और स्थान विशद है। ब्राह्मणेतर जातियों को दर्शन यहीं से मिलता है। केवल ब्राह्मणजाति के लोग ही मन्दिर के भीतर जा सकते हैं। यहाँ पुजारी महाराष्ट्रजाति के हैं। ये श्रीत्र्यम्बकेश्वर जी भूगर्त में विराजमान हैं। सभामन्दिर में जो मन्दिर-द्वार है वहाँ से ८ या १० सीढ़ी नीचे उतरना पड़ता है, भीतर यद्यपि दीपक सदैव जलते रहते हैं; तथापि बाहर से जाते कुछ अंधकार सा ज्ञात होता है, अतः सावधानी से उतरना चाहिये। जब आप भीतर पहुँच जायँगे तो वहाँ कोई शिवलिंग दृष्टिगोचर नहीं होगा। किन्तु एक छोटा-सा गर्त है, और उस गर्त से जल सदैव निकलता ही रहता है। यह ज्योतिर्लिङ्ग ब्रह्म, विष्णु, महेश्वरात्मक माना जाता है। बस इसी गर्त में विधानपूर्वक पूजन, अभिषेकादि कार्य होता है। पुजारी लोग बैठे रहते हैं; वे लोग हाथ से स्पर्श कराकर श्रीत्रिदेव के कलेवरों को दिखा देते हैं। उस छोटे से कुण्ड में तीन ओर उन्नत पाषाणमयी मूर्तियां श्रीब्रह्मा, विष्णु, शिवजी की विराजमान हैं। यहाँ कृत्रिमता का लेश नहीं है। महामहिमभगवान्श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी विराजमान हैं। दर्शन पाते ही पातकगण तूलराशि की भांति भस्म हो जाते हैं। और चित्त इतना प्रफुल्लित हो जाता है कि सत्त्वसागर से बाहर

स्वतः ही नहीं निकलता, यह भगवान् श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी के दर्शन का प्रभाव है। भीतर बहुत अधिक स्थान नहीं है, अतः विधि-पूर्वक भगवान् का दर्शन, पूजन कर स्तुतिपुरस्सर प्रणाम-प्रार्थनादि के अनन्तर यद्यपि मन तो वहां से निकलना नहीं चाहता पर बाहर आ जाना चाहिये। और कुछ देर भगवान् का ध्यानादि कर भगवान् श्रीनन्दीश्वरजी का दर्शन-पूजन कर परिक्रमा करनी चाहिये। परिक्रमा में एककुण्ड कोने पर मिलता है, यद्यपि यह तीर्थभूत है, पर जल अच्छा नहीं रहता है। इस तरह दर्शनादि कृत्य समाप्त कर अपने स्थान पर आ भोजन विश्राम करना उचित है। दूसरे समय लगभग चार बजे ब्रह्मगिरि पर्वत पर श्रीगंगाद्वार के दर्शनों को जाना चाहिये। सीढ़ियाँ अच्छी चौड़ी लगी हैं। बीच में भी कई एक दर्शनीय मन्दिर मिलते हैं। पहाड़ के मध्यभाग में एक छोटी-सी गुफा है, कभी-कभी कोई साधु भी यहाँ रहते हैं और पास ही पर्वत से जल निकलकर एककुण्ड में भरता है। जल बड़ा ही सुस्वादु है, कुछ लोग इसी को गंगाद्वार कहते हैं। अनन्तर यह जल कहाँ गया, यह पता नहीं मिलता। आगे भी जाने का मार्ग है कुछ लोग यहाँ से आगे गंगाद्वार बताते हैं। उक्त शास्त्रलेखानुसार गंगाद्वार यही होना चाहिये, यहीं तक सीढ़ियाँ और मनुष्य अधिक जाते हैं। आगे मार्ग जंगली और दुर्गम है। यों तो यह ब्रह्मगिरि स्वयं तीर्थमय है। आगे जाने वाले उत्साही व्यक्ति आगे भी जा सकते हैं। यह दृश्य इतना मञ्जुल है कि नेत्र प्राकृतिकसौन्दर्य सुधापान में लीन हो निमि के व्यापार निमेष की रेख में मेखमार स्तब्ध हो जाते हैं। श्याम, हरितवन्यवृक्ष, गुल्म, लतावों से युक्त यह पार्वत्य वन-स्थली, अपनी शांति सहचरी के साथ सदैव विराजमान रहती है। इस प्रकार अनुपम दृश्यों को देखते सायंकाल भगवान् त्र्यम्बकेश्वर

जी की आरती का दर्शन कर अपने स्थान में विश्राम करना चाहिये गंगाद्वार को आजकल गोमुखीगंगा भी कहते हैं।

दूसरेदिन— कुशावर्ततीर्थ में स्नानादि कर भगवान् श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी को अभिषेकादि करवाना चाहिये और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन, कुछ हवनादि, दान-दक्षिणा आदि कृत्य को समर्थ-धनीयात्री मध्याह्न तक समाप्त कर लें। तदनन्तर भोजन, विश्राम कर पर्वत के शृंग पर एक शिवमूर्ति विराजमान है, और ऊपर के लिये सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। जाने की शक्ति और उत्साह हो तो अवश्य जाना चाहिये। आज दिन इस शिवमूर्ति को जटाफटकारेश्वरजी कहते हैं। और इन्हीं की जटा से गंगाजी निकली हैं; ऐसी प्रसिद्धि है। ऊपर से दृश्य कैसा सुन्दर ज्ञात होता है, यह वर्णनातीत है। इनका दर्शन कर अपने स्थान पर आ विश्राम कर सायंकाल पुनः श्रीत्र्यम्बकेश्वरजी का दर्शन ले शयन करना चाहिये।

तीसरेदिन—प्रभात कृत्य, स्नानादि कर भगवान् का दर्शन, पूजन करके चलने के लिये प्रार्थना पुरस्सर आज्ञा माँग बहुतेरे यात्री नासिक-पंचवटी लौट आते हैं। पर इस क्षेत्र का माहात्म्य अच्छा है इसलिये यथावकाश तीसरीरात्रि भी निवास करना अधिक अच्छा है। ब्रह्मगिरि पर्वतश्रेणियों से घिरा हुआ यह तीर्थ बड़ा ही सुन्दर ज्ञात होता है। इसकी शोभा शांतहृदय से अवलोकन करने में आनन्द आता है। आजकल यह गाँव तिरमुख कहलाता है। इसमें महाराष्ट्रब्राह्मणों के ५०० से अधिक घर होंगे। इसका शुद्ध नाम त्र्यम्बकक्षेत्र है। अथवा त्रिकण्टक क्षेत्र भी लिखा मिलता है। यहाँ पर प्रथम काल में खर-दूषण और त्रिशिरा नामक देवता, ऋषियों के कण्टकभूत तीन राक्षस बड़े बलवान् रहते थे। इनको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने मारकर

इस भूमि का उद्धार किया, और ब्राह्मणों के निवास योग्य बना दिया, इसलिये यह त्रिकण्टकक्षेत्र भी कहाता है। इसी का अपभ्रंश आज दिन तिरमुख हो गया है। यहाँ सब प्रकार की खाद्य-सामग्री आदि वस्तुयें मिलती हैं।

——oc——

६–चिताभूमौ वैद्यनाथम्

श्रीवैद्यनाथज्योतिर्लिङ्ग का प्रादुर्भाव

बड़ा घमण्डी राक्षसों में श्रेष्ठ रावण ने कैलासपर्वत में श्री शंकरजी की आराधना आरम्भ किया ॥ १ ॥ कुछ काल आराधन करने पर जब शंकर जी न प्रसन्न हुये, तब वह हिमालय के दक्षिण वृक्षों के समुदाय में, भूमि में एक गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि को स्थापन कर और उसके समीप शिवजी को स्थापित किया; तथा भाँति भाँति से हवन किया ॥ २ ॥ ३ ॥ तब भी जब शंकरजी न प्रसन्न हुये, तब वह अपने मस्तकों को काट काट हवन करने लगा, जब इस प्रकार उसने पूजन करना आरम्भ किया और वह अपने नव मस्तक काट चुका; केवल एक ही शेष रहा; उसको भी जब काटने को वह उद्यत हुआ तब श्रीशंकरजी प्रसन्न हो गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ और श्रीशंकरजी बोले—कि हे राक्षस! क्या चाहते हो, बोलो तुमको वरप्रदान करते हैं। तब रावण बोला कि—हे देव देव! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे श्रेष्ठ बल देव, और हमारे शिर पहिले जैसे हो जाँय। ऐसा रावण का भक्ति युक्त वचन सुनकर श्रीशंकरजी ने वैसा ही कर दिया ॥ ७ ॥ जब उसको अतुल बल दे दिया और उसके मस्तक भी उसी प्रकार सब हो गये, तब रावण शंकर का वरप्रसाद

पाकर अपने घर चला, पर देवता, ऋषि सब बड़े दुःखी हुये; और कहने लगे कि क्या करें, कहाँ जाँय, आगे क्या होगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा देवगणों का आर्तवचन सुनकर नारदजी बोले—कि हे देवगण! शोक त्याग करो, हम युक्ति कहते हैं; ऐसा कह कर जिस मार्ग से रावण जा रहा था उसी मार्ग में नारदजी भी वीणा बजाते पहुँचे ॥ १० ॥ ११ ॥ और देवकार्यार्थ नारदजी रावण से बोले—कि हे राक्षसोत्तम! तुम धन्य हो। आज क्या है तुम बहुत प्रसन्न हुये शीघ्रता से जा रहे हो? रावण ने कहा कि श्रीशंकरजी की आराधना कर उनको प्रसन्न किया। उनसे अतुल बल प्राप्त कर घर जारहे हैं। फिर नारदजी ने पूँछा कि कैसे शिवजी को प्रसन्न किया? तब रावण ने सर्व वृत्तान्त यथार्थ कह सुनाया ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ और कहा कि श्रीशंकरजी की कृपा से मैंने अपना मनोवांछित फल प्राप्त कर लिया। वर देकर श्रीशंकरजी वैद्यनाथेश्वर नाम से स्थित होगये। वे लोककल्याणार्थ जब स्थित हुये तब उनको प्रणामादि कर त्रिभुवन जीतने को हम लौट आये ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह श्रीवैद्यनाथजी की उत्पत्ति कही, इनका माहात्म्य सुनकर सब पाप भस्म हो जाते हैं ॥ १७ ॥

श्रीवैद्यनाथधाम

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में श्रीवैद्यनाथ जी बड़े महत्त्वशाली देव पर आजकल भारतवर्ष में तीन या चार वैद्यनाथ जी हैं। और सभी प्रसिद्ध मनोवांछित फलप्रद हैं। पर इन सभों में ज्योतिर्मूर्ति कौनसी है? यह संशय उत्पन्न हो सकता है। श्रीशिवपुराण में "वैद्यनाथं चिताभूमौ" यह लेख पाया जाता है। इसलिये चिताभूमि पर इस ज्योतिर्लिङ्ग का होना सिद्ध है। यह चिताभूमि गया जी से पूर्व वैद्यनाथधाम के आस पास की भूमि

अधिक जनप्रसिद्धि से सुनी जाती है। अभीतक इसमें कोई बलवच्छास्त्र का प्रमाण इसतरह उपलब्ध नहीं है कि यही चिता-भूमि है पर भारत के अधिक संख्यक लोग उड़ीसा में दुमका जिले के अंतर्गत "वैद्यनाथधाम" इस नाम से प्रसिद्ध जो तीर्थ है। इन्हीं को श्रीवैद्यनाथेश्वर जी समझते हैं। यह शिवलिङ्ग देखने से यह ज्ञात होता है कि बहुत प्राचीन है। मूर्ति मंदिर के मध्यभाग में केवल दो ही तीन अङ्गुल अरघा से ऊँची विराजमान है। और मूर्ति के ऊपर एक गड्ढा सा है वह रावणकृत माना जाता है। हमको इस बात का संदेह था कि किस ज्योतिर्लिङ्ग का इस पुस्तक में स्वयंभूरूप से लेख किया जाय। दाक्षिणात्य लोग "परल्यां वैद्यनाथं च" ऐसा कहते हैं। अर्थात् हैदराबाद स्टेट के अन्तर्गत मनमाड़ जंकशन एवं हैदराबाद को जो रेलवे मिलाती है, इसी-लाइन में परभनी परली की तरफ़ ब्रांच लाइन गई है; उसी में परलीग्राम स्टेशन पड़ता है। इन को ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। और दाक्षिणात्य लोग यह भी कहते हैं कि रावण को वैद्यनाथ जी के लंका ले जाने का मार्ग यही होना चाहिये। पर इस मार्ग में और सम्प्रति जो सीलोनद्वीप (लंका) प्रसिद्ध है, इसमें कोई प्रबल साधक नहीं मिलता कि रावण का यही मार्ग था और लंका भी यही है। क्योंकि लंका के जाने में हमारे सर्वमान्य वाल्मीकि इतिहास में शतयोजन का समुद्र श्रीहनुमान जी के उल्लंघन में वर्णित है। वर्तमान द्वीप श्रीरामेश्वरधाम से २० मील के भीतर ही है। और आनन्दरामायण के लेख से यह ज्ञात होता है कि जब विभीषण श्रीरघुनाथजी की शरण गये थे; उस समय एक कृत्रिम लंका बनाकर उसी में बैठाकर विभीषणजी को राज्याभिषेक दिया था। वह तब तक थाती रूप में विभीषण को दी गई थी ज़ब तक रावण को मारकर असली लंका न दी जायगी। मुख्यलंका में

जब विभीषण को राज्य मिल गया तब वह कृत्रिम लंका ले ली गई, उसे हनुमान जी ने वहीं स्थापन कर दिया, वह परलंका कहाई थी। हो सकता है कि वर्तमान सीलोन द्वीप वही कृत्रिम लंका हो। शिवपुराण के लेख से यह सिद्ध है कि कैलाश के समीप शिवाराधन रावण ने किया था, वहाँ से श्री वैद्यनाथ जी को लंका लाने का मार्ग आज दिन उत्कलदेशीय वैद्यनाथ जी होकर अत्यन्त ठीक भी ज्ञात होता है। आज दिन प्रसिद्ध कैलास पर्वत से रावण के लंका जाने का मार्ग यही हो सकता है। इसलिये चिताभूमिस्थ उत्कलीय वैद्यनाथजी ही ज्योतिर्लिङ्ग हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

इसमें साधक ये बातें हो सकती हैं। १—शिवपुराण में चिता भूमि में वैद्यनाथजी का होना पाया जाता है, परली आदि में नहीं। २—कैलास से लङ्का का मार्ग भी इस मार्ग से जिसमें उत्कलीय वैद्यनाथजी विराजमान हैं; दूसरा सीधा नहीं हो सकता है। ३—भारतीय अधिक जन स्वीकृति भी चिरकालीन ऐसी ही है। ४—मूर्ति की प्राचीनता यह सबसे प्रबल प्रमाण है। परली वैद्यनाथजी की मूर्ति उतनी प्राचीन नहीं ज्ञात होती है। ५—स्थान की स्थिति भी प्रमाणभूत हो सकती है। इत्यादि प्रमाणों से उत्कल देशस्थ ही ज्योतिर्लिङ्ग सिद्ध होते हैं।

एकबार मेरा जाना शिवरात्रि के समय उत्कलीय वैद्यनाथजी हुआ और हम ब्रह्मचारी बालानन्दजी के आश्रम में ठहरे हुये थे। रात्रि के समय अपने आसन पर पड़े हुये इसी चिन्ता में पड़े थे कि ज्योतिर्लिङ्ग मूर्ति कौन है? इसी विचार में सो गये, तब स्वप्न में एक जाज्वल्यमान शिवलिंग का दर्शन इसी स्थान में हुआ, तब से हमको पूर्ण विश्वास हुआ कि यही उत्कलदेशस्थ वैद्यनाथजी ही ज्योतिर्लिंग हैं।

तृतीय वैद्यनाथजी को रामनगर एवं काठगोदाम तक, रेलद्वारा

इसके अनन्तर रानीखेत, अल्मोड़ा होकर वैद्यनाथजी तक सड़क गई है। यह स्थान अल्मोड़ा से उत्तर पहाड़ीप्रदेश में है। पास ही कुछ दूर पर वागेश्वरशिवजी भी विराजमान हैं। पर उक्त कारणों के अभाव से ये भी स्वयंभू नहीं ज्ञात होते हैं। इसलिये उत्कलीयवैद्यनाथजी ही ज्योतिर्लिङ्ग समझ, जाने का मार्गादि प्रदर्शन किया जाता है।

श्रीवैद्यनाथजी को जाने का मार्ग, ई० आई० रेलवे जो बांकीपुर होती हुई कलकत्ता जाती है, वही लाईन है। और उसमें जैसीडीह स्टेशन उतर जाना चाहिये। जैसीडीह से एक शाखा केवल वैद्यनाथधाम तक ही निकाली गई हैं। स्टेशन पहुँचते ही पण्डे पिण्ड पड़ जाते हैं, वे यात्रियों को अपनी-अपनी प्रशंसा करते हुये खींच-खाँच करते हैं। अस्तु किसी पंडे के यहाँ या किसी धर्मशाला में अपनी स्थिति ठीक कर लेनी चाहिये। तदनन्तर स्थिरता के साथ मंदिर के पास ही शिवगंगा सरोवर में स्नान करना चाहिये। यह वैद्यनाथधाम का तीर्थ है, पर जल उतना स्वच्छ नहीं है जितना तीर्थ का होना चाहिये। विधिपूर्वक स्नानादि, तर्पण, पिण्डादि देकर बाबावैद्यनाथजी के मंदिर जाना चाहिये। पूजा सामग्री ठीक पहिले ही से कर रखना चाहिये, अथवा पुष्पादि सब पूजा सामग्री मंदिर के भीतर तथा बाहर भी मिलती है। द्वार के भीतर जाते ही एक कूप मिलता है, इसी कूप का जल शिवजी के ऊपर चढ़ता है। भीतर एक अच्छा मैदान है जिसके बीच में वैद्यनाथजी का मंदिर तथा किनारे-किनारे चारों ओर अन्नपूर्णाजी, गणेशजी, कार्तिकेय, वीरनाथआदि के बाइस मंदिर हैं। वैद्यनाथजी के मंदिर पर एक बड़ी भारी ध्वजा फहराती रहती है जो सामने भगवतीजी के मंदिर की ध्वजा से जोड़ी जाती है। पण्डित चारों ओर बैठे सदैव पाठ किया करते हैं। पण्डे भी भरे

रहते हैं। मंदिर का द्वार छोटा सा है और बाहर से भीतर जाने में अंधकार भी रहता है, अतः भीतर सावधानी से जाना चाहिये। वहाँ जाकर भगवान् वैद्यनाथजी का दर्शन पाकर चित्त प्रमुदित हो जाता है।

चाँदी के अर्घा के मध्य में मूर्ति विराजमान है जो अर्घा के ऊपर लगभग तीन अंगुल से अधिक ऊँची नहीं दिखाई पड़ती, सुना जाता है कि भूगर्भ में इस लिंग का पता नहीं लगता कि कहाँ तक है। स्थिरता से गंगाजल आदि यदि साथ हो तो प्रथम स्नान करा, चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, द्रव्यादि से भगवान् का पूजन प्रेम पूर्वक करना चाहिये। और महिम्न तथा रुद्राष्टाध्याय से स्तवन करना एवं कराना चाहिये। इस मूर्ति में गंगाजल चढ़ाने के लिये बहुत दूर-दूर से लोग काँवर ले लेकर आते हैं। पूजन प्रणामादि के अनन्तर बाहर के देव तथा देवियों का भी पूजन यथाविधि करना चाहिये। सामने भगवतीजी पधरी हैं उनका पूजन विधिपूर्वक करके प्रदक्षिणादि दे कुछ विश्राम लेकर भगवान् का ध्यान स्मरण आदि कर अपने स्थान पर आ भोजन विश्राम करना चाहिये। बाहर मन्दिर के चारों ओर छोटे-छोटे लड़के लड़कियाँ माँगनेवाले बहुत से रहते हैं। उनको कुछ न कुछ दे देना चाहिये। मन्दिर के भीतर इतना जल चढ़ता है कि सदैव किचपिच बनी रहती है। पर मध्याह्न तथा सायं आरती के समय मंदिर पूर्णतया धो-पोंछ कर स्वच्छ किया जाता है। और पूजन तथा आरती विधि विधान के साथ होती है। इसलिये सायंकाल आरती का आनन्द दर्शन अवश्य लेना चाहिये। तदनन्तर आवश्यक वस्तुवें बाजार से लेकर अपने स्थान पर आ विश्राम लेना चाहिये।

दूसरे दिन शिवगंगा में स्नानादिकार्य कर पुनः बाबा वैद्यनाथ

जी की पूजा तथा एक रुद्राभिषेक अवश्य करना चाहिये तदनन्तर कुछ हवन एवं ब्राह्मण भोजन, दक्षिणादि देना चाहिये। ततः स्वयं भोजनादि कर विश्राम करना चहिये। दूसरे समय द्रष्टव्य स्थानों को देखते हुये सायंआरती देख अपने आसन पर आ जाना आवश्यक है। धाम की बस्ती बड़ी नहीं है।

तीसरे दिन स्नानादि कृत्यों से शीघ्र निवृत्त हो, दर्शन पूजन कर धाम प्रदक्षिण कर लेना चाहिये; और किसी सवारी द्वारा पाँच छः मील पर तपोवन यदि इच्छा हो तो जाना चाहिये, वहाँ एक छोटा-सा पहाड़ है उसमें दो एक देवमूर्तियाँ पधरी हैं और एक गुफा श्रीबालानन्दब्राह्मचारीजी की तथा नीचे के तरफ कुछ स्थान तथा एक पाठशाला श्रीबालानन्दजी ब्रह्मचारी के द्वारा स्थापित हुई थी। जाते तथा लौटते समय उनका आश्रम भी मिलता है। इस तरह दर्शनादि कर पुनः लौट विश्राम लेना, दूसरे समय पुनः दर्शनादि कर तीसरी रात्रि बिता बाबावैद्यनाथ जी से आज्ञा मांग चल देना चाहिये। यहाँ का जलवायु अच्छा है जिसके सेवनार्थ दूर-दूर से लोग आते हैं। उनके बंगले आदि भी बने हैं। शिवरात्रि के दिन लाखों मनुष्य यहाँ जल चढ़ाने तथा पूजा करने के लिये उपस्थित हो जाते हैं इसलिए दर्शन बड़ी कठिनता से मिलता है। वैद्यनाथजी स्वास्थ्य आदि प्रदाता सिद्धमूर्ति हैं। कहीं-कहीं ऐसा लेख मिलता है कि रावण की माता ने कुवेर का ऐश्वर्य देख रावण को कहा कि देख तेरा भाई कैसा ऐश्वर्यवान् है, तूने क्या किया? यदि तूने कुछ उसके सदृश उन्नति नहीं प्राप्त की तो तेरा जीना व्यर्थ है। इस वाक्य-शराघात से ताड़ित हो रावण शिवाराधन के लिए जब तैयार हुआ तब उसकी माता ने अपनी पूजा के लिए एक शिवलिंग लाने को कहा। रावण ने उसी विचार से जब कैलास तट पर उसकी आराधना से

प्रसन्न हुए तब शंकरजी से लंका चलने को कहा। शंकरजी ने स्वीकार किया, और कहा कि देख यदि भूमि पर कहीं तूने रख दिया तो फिर हम आगे न जायँगे, वहीं रहेंगे।

कहीं ऐसा भी लेख मिलता है कि रावण ने श्रीपार्वतीजी को भी अपनी स्त्री बनाने के लिए मांगा। आशुतोष शंकरजी ने दे डाला। अब शंकर और पार्वती को लेकर चला, श्रीपार्वतीजी ने मन में विष्णु भगवान् का स्मरण किया, उस समय विष्णुदेव एक ब्राह्मण के रूप से प्रकट हो रावण से यह वृत्तान्त पूँछा; रावण सब कह ही रहा था कि उसको बड़े जोर से लघुशंका लगी। रावण शिवलिंग को एक मुहूर्त ब्राह्मण को लेने के लिए कहा। ब्राह्मणदेव ने कहा कि एक मुहूर्त से किञ्चित् भी आगे होगा तब हम भूमि में रखकर चले जायँगे। ऐसा होने पर रावण लघुशंका (मूत्र करने) बैठा। दैवयोग से रावण की मूत्रधारा बड़ी देर में शांत हुई; ब्राह्मणदेव वहीं रखकर चले गये, तब शंकरजी वहीं अचल हो गये। रावण पवित्र होकर जब आया और मूर्ति को ले चलने के लिए पुनः उठाना चाहा पर मूर्ति टस से मस न हुई। बहुत कुछ हिलाया, प्रयत्न किया; पर कुछ प्रभाव न पड़ा। ऐसी कहावत है कि उसी समय से रावण के कराघात से मूर्ति पर एक गढ़ा पड़ गया है। मूर्ति के मस्तक पर कुछ गढ़ा-सा अब भी ज्ञात होता हैं। तब से वह ज्योतिर्लिङ्ग वहीं रहा और रावण के मस्तकादि प्रदान में वैद्य का कार्य करने से वैद्यनाथजी इस आख्या से प्रसिद्ध हुए।

जब पार्वतीजी को लेकर चला, तब आगे वही ब्राह्मण फिर मिले; और रावण से बोले कि तुमको शिवजी ने धोखा दिया और असली (दुर्गा) पार्वती न देकर नकली दे दिया है। असली तो मयदानव के घर पाताल में छिपा दिया है। यह सुनकर

रावण पार्वतीजी को नकली समझ त्याग दिया और असली को लेने पाताल मयदानव के यहाँ गया। मयदानव ने उस समय रावण को अपनी पुत्री मन्दोदरी दे दिया, रावण प्रसन्न हो मन्दोदरी को लेकर लङ्का लौट आया। पार्वतीजी भी शंकर के पास लौट आयीं। इस प्रकार श्री वैद्यनाथजी ज्योतिर्लिङ्ग प्रगट हुए।

१०—नागेशं दारुकावने

दशमज्योतिर्लिङ्गनागेशनाथ-प्रादुर्भाव

भाषार्थः—श्रीसूतजी बोले कि—हे शौनकादिक महर्षियो ! अब इसके अनन्तर नागेशनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का प्रादुर्भाव जिस प्रकार हुआ उसको कहते हैं ॥ १ ॥ एक दारुका नामक राक्षसी पार्वतीजी के बल से बड़ी गर्ववती थी, और उसका पति दारुक नामक राक्षस भी बड़ा बली था ॥२॥ उस दारुक नामक राक्षस ने बहुत राक्षसों को साथ लेकर बहुत मनुष्यों को मारा, संसार में यज्ञों का विध्वंस और धर्म का उसने ध्वंस किया ॥ ३ ॥ चारों तरफ विस्तृत १६ सोलहयोजन में सर्वऐश्वर्य से युक्त उसका वन पश्चिमसमुद्र के किनारे था ॥ ४ ॥ भगवती पार्वती ने दारुका राक्षसी को वन के चलने का वरदान दिया था, इसलिए दारुका जहाँ जाती थी, वहाँ वह वन जाता था ॥ ५ ॥ भूमि, वन, वृक्ष सब सामग्री के साथ वह वन जाता था, उसमें बैठकर वह दारुक राक्षस सबको भययुक्त किया ॥ ६ ॥ सब मनुष्य उससे पीड़ित होकर औवंमहर्षि की शरण गये और बोले कि हे महर्षे ! शरण दीजिये, नहीं हम लोग इस दुष्ट के द्वारा मारे जायेंगे ॥ ७ ॥ औवंमहर्षि बड़े मानवाले और शरणागतवत्सल थे, बारंबार

लोगों से प्रार्थित होने पर बोले कि हम तुम्हारा उपकार करेंगे, ऐसा कहकर हे मुनीश्वरो ! राक्षसों के लिये और्वमहर्षि ने शाप दिया, कि यदि पृथिवी पर प्राणियों की हिंसा राक्षस करेंगे, और यज्ञों का विध्वंस करेंगे तो वे नष्ट हो जांयगे ॥ ८ ॥ ९ । १० ॥ ऐसा शाप देते हुए प्रजा को अश्वासन दे, और्वमहर्षि विधिपूर्वक लोक को सुख देनेवाला तप करने लगे ॥ ११ ॥ तब देवता गण शाप का कारण हित समझ राक्षसों के साथ युद्ध का उद्योग किया ॥ १२ ॥ उनको देख राक्षस बड़े विचार में तत्पर हुये, और कहने लगे कि क्या करें, कहां जांय, बड़ा संकट उपस्थित हो गया ॥ १३ ॥ यदि युद्ध करते हैं, तो मरते हैं, नहीं युद्ध करते हैं तो भी मारे जाते हैं तब दारुकानाम की राक्षसी यह दुःख उपस्थित देख, भगवतीपार्वतीजी से वर देने को कहा, भगवतीजी ने कहा तेरा वन जहाँ तू जाना चाहेगी तेरे साथ जायगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ इसी समय मनुष्य और देवगण युद्ध के लिए इकट्ठे होकर भाँति भाँति के दुःखों से राक्षसों को पीड़ित किया ॥ १६ ॥ तब दारुका राक्षसी भवानी के बल को आश्रयण कर संपूर्ण स्थलसहित उस अपने वन को लेकर जल में स्थित हुई और जय जय ऐसी भगवती की स्तुति को उच्चारण करती समुद्र के मध्य में निर्भय होकर स्थिर हुई ॥ १७ ॥ १८ ॥ अब राक्षस लोग मुनि के शाप भय से पृथिवी पर नहीं आये, केवल जल में ही भ्रमण करते थे ॥ १९ ॥ तब राक्षस लोग नौकावों (जहाजों) आदि में जो समुद्रों में भ्रमण करते थे, उनको पकड़ कर अपने नगर में ले जाते थे, किसी को जेलखाने में डाल देते और किसी को मार डालते थे ॥ २० ॥ इस प्रकार बहुत काल बीतने पर राक्षस लोग लोक को पीड़ा देने के लिए जल में निकल पड़े और जल के मार्गों को बन्द कर दिया ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि हे मुनिश्वरो !

वे मनुष्यों को पकड़ने के लिए गुप्त रूप से स्थित हो गये। इसी बीच में वहाँ बहुत सी सुन्दर नावें आ गयीं, और वे नावें सब प्रकार से मनुष्यों से भरी थीं, तब राक्षस लोगों ने जाकर सबों को पकड़ लिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ और अपने नगर में ला कारागार में सबको बन्द किया, उन वन्दियों के मध्य में जो स्वामी था वह बड़ा शिवभक्त था ॥ २४ ॥ वह बिना शिवपूजा किये कहीं भी नहीं रहता था; कारागार में भी उसने बहुतों को शिवपूजा सिखाई ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वरो! शिवपञ्चाक्षर मन्त्र के द्वारा पार्थिवशिवपूजन यथाशास्त्र वे लोग वहाँ करते थे ॥ २६ ॥ उन लोगों के स्वामी ने वहाँ प्रथम, प्रत्यक्षशिवपूजन विधान से पार्थिवमूर्ति का किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर उस शिवप्रिय सुप्रिय वैश्य ने मानसध्यान द्वारा मानसोपचारपूजनादि बड़े प्रेम से किया, श्रीशंकरजी अपने स्वरूप को धारण कर जो कुछ उसने किया उसे ग्रहण किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ वह स्वयं इस बात को नहीं जानता था कि मेरी की हुई पूजा को शंकर जी प्रत्यक्षरूप से ग्रहण करते हैं, इस प्रकार उसको करते छः महीने बीत गये ॥ ३० ॥ एक बार उस दुष्ट के दास राक्षसों ने, उस वैश्य के सामने श्रीशंकरजी का बड़ा सुन्दर स्वरूप देखा ॥ ३१ ॥ और जाकर अपने राजा से सब यथार्थ बताया, राजा आकर उस वैश्य से पूछने लगा ॥ ३२ ॥ उसने कहा कि आप जानते ही हो, यह सुन वह राक्षस बड़ा कुपित हुआ और राक्षसों से कहा कि इन सबों को मार डालो। मारने के लिये आये हुये उन राक्षसों को देख, भय से व्याकुल नेत्रवाला वह वैश्य हे शंकर? रक्षा करो इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करने लगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब शंकरजी की प्रार्थना किया, तब चार द्वारवाले बड़े सुन्दर विवर (जो गृहसदृश था) उससे श्रीशिवजी निकले ॥३५॥ विवर के

मध्य में उनका ज्योतिस्वरूप बड़ा ही अद्भुत था, और अपने परिवार युक्त थे, तब उस वैश्य ने उनका पूजन किया ॥ ३६ ॥ पूजित होने पर श्रीशंकरजी प्रसन्न हो गये, और अपनें पाशुपतअस्त्र से सब सामग्री के सहित उन राक्षसों का नाश किय। । सब राक्षसों का नाश करके उस भक्तवैश्यवर्य को बरदान देने लगे ॥३७॥३८॥कि इस वनमें सदैव वर्णाश्रमधर्म प्रवृत्त हो, इसी समय उस दारुका नाम्नी राक्षसी ने भगवतीजी की स्तुति किया ॥ ३९ ॥ प्रसन्न होकर श्री पार्वतीजी बोलीं कि हम क्या तेरा उपकार करें, वह राक्षसी बोली कि हे देवि ! हमारे वंश की रक्षा करो ॥ ४० ॥ तब श्री पार्वतीजी बोलीं कि तेरे वंश की हम रक्षा करेंगी यह हम सत्य कहती हैं, ऐसा कहकर श्रीपार्वतीजी ने श्रीशंकरजी से झगड़ा किया ॥ ४१ ॥ तब शंकरजी अप्रसन्न हो बोले कि हे देवि जैसी आपकी इच्छा हो सो करो, ऐसा श्रीशंकरजी का वचन सुन श्रीपार्वतीजी बोलीं ॥ ४२ ॥ कि हे प्रभो ! आपका वचन युग के अंत होने पर सत्य होवे, तब तक तामसी सृष्टि हो ऐसा मुझे पसंद है ॥ ४३ ॥ यह दारुका राक्षसी मेरी शक्ति है, और वलिष्ठ है तब तक राक्षसों का राज्य करेगी ॥ ४४ ॥ ये राक्षसों की स्त्रियाँ पुत्रों को उत्पन्न करेंगी, ऐसा वचन सुन भक्तों के पालन करने के लिये हम इस वन में निवास करेंगे, ऐसा वचन श्रीशंकरजी बोले और जब वर्णधर्मस्थ पुरुष मेरा यहाँ दर्शन करेगा तब वह चक्रवर्तीराजा होय, महासेन का पुत्र वीरसेन मेरा दर्शन करके चक्रवर्तीराजा होगा, इस प्रकार वे दम्पति (शिव पार्वती) जी परस्पर हास्य करके ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ नागेश नाम ज्योतिर्लिंगरूप से वहां स्थित हुये । ऋषि लोग बोले कि हे सूतजी ! वीरसेन उस दारुका वन में कैसे जायगा ? ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले कि सुन्दरनैषधदेश में

क्षत्रियकुलोत्पन्न महासेन के पुत्र वीरसेन ने पार्थिवशिवपूजन करते हुये बारह वर्ष बड़ा दुष्करतप किया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तब श्रीशंकरजी प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दे, बोले कि हे वीरसेन ! एक काष्ठ की त्रपुधातु से लिप्त मत्सिका (मछली) जिसमें योग-माया का विधान रहेगा तुमको देंगे, उसे ग्रहण कर नौकावों के साथ तुम अभी जावो ॥५२॥५३॥ उस वन के निवासी अन्य सब म्लेक्ष रूप होंगे, एक तुम हमारे विवर में जाकर प्रवेश करो, और श्रीनागेश्वरनाथजी की पूजा करके पशुपतिअस्त्र को प्राप्तकर राक्षसी तथा उसके सब परिवार को मार डालो ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ श्रीपार्वतीजी का दिया हुआ वर या बल भी तब पूर्ण हो जायगा। हमारे दर्शन करने पर तुमको किसी बात की कमी नहीं रहेगी ॥ ५६ ॥

ऐसा जब शंकरजी से वर प्राप्त होगा तब वह सब कुछ करने में समर्थ होगा, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार से ज्योतिर्लिंगों में श्रेष्ठ नागेश्वर देव की उत्पत्ति हुई; इसको जो श्रवण करता है उसके सब महापाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर हे मुनीश्वरो ! श्रीरामेश्वरज्योतिर्लिंग किस प्रकार उत्पन्न हुआ उसे कहेंगे ॥ ५९ ॥

दशमज्योतिर्लिङ्गश्रीनागेश्वरनाथजी का वर्णन

श्रीनागेश्वरनाथजी भी कई प्रसिद्ध हैं। एक श्रीनागेश्वर-नाथ जी श्रीअयोध्याजी में विराजमान हैं। श्रीसरयूजी के तट पर बहुत प्रसिद्ध तथा प्राचीन मूर्ति श्रीनागेश्वरजी की है। इनका वर्णन श्रीअयोध्याजी के वर्णन में किया जा चुका है। बड़े जागृतदेव हैं मनोवांछित फलप्रद हैं। बहुतेरे लोग इन्हीं को ज्योतिर्लिंग मानते हैं पर जिस प्रकार की घटना श्रीनागेश्वरजी के प्रादुर्भाव की शिवपुराण से ज्ञात होती है वैसी यहाँ नहीं घटती है। यों भावनानुसार सभी शिवमूर्तियाँ ज्योतिर्लिङ्ग ही हैं।

दूसरी नागेश्वरनाथजी की मूर्ति बेटद्वारिका से जब गोपीतलाई की ओर जाते हैं तब मार्ग में मिलती है; इनका वर्णन प्रथम किया जा चुका है। यहाँ समुद्र पास होने के कारण "दारुका-वन" का कुछ आभास मिलता है, क्योंकि दारुकाराक्षसी ने अपना वन श्रीपार्वतीजी के वरप्रसाद से समुद्र के मध्य में ले गई थी, ऐसा उक्त शिवपुराण के लेखानुसार ज्ञात होता है। और पश्चिमसमुद्र तट भी है। जंगल का दृश्य तो वहाँ स्वाभाविक है। मूर्ति बड़ी सुन्दर और प्राचीन है; पर जनता वहाँ अधिक नहीं जाती है कोई रहता भी नहीं है, न तो कोई पण्डा और न कोई पुजारी ही वहाँ सदैव रहता है; केवल शून्यता वहाँ विराजमान रहती है। पास में एक टूटी-फूटी धर्मशाला है; और एक बहुत छोटा-सा ग्राम है। बहुत लोगों की ऐसी किंवदन्ती है कि ये ज्योतिर्लिंग है। पर भारतीय अधिकांश जनता में निम्नलिखित नागेश्वरनाथजी प्रसिद्ध हैं। अतः उनका वर्णन करते हैं। ये "औंडानागनाथ" इस नाम से प्रख्यात हैं; यहाँ जाने के लिये जी० आ० पी० रेलवे के मनमाड़ जंकशन से निजामस्टेट रेलवे जो हैदराबाद को गई है; उसमें ही परभनी जंकशन से पूर्ना जंकशन और पूर्ना से हिंगोली लाइन में चोंड़ी स्टेशन पड़ता है, बस इसी "चोंडी" स्टेशन में उतर जाना चाहिये। स्टेशन से लगभग १४ माइल मोटर से जाना पड़ता है; मोटर तैयार मिलती है। किराया ।=) छः आना या कभी ॥) आठ आना भी ले लेते हैं। इसी लाइन में तीनों ज्योतिर्लिङ्ग घुमेश्वरजी, तथा वैद्यनाथ परलीवाले एवं नागनाथजी औंडावाले ये विराजमान हैं। थोड़े-थोड़े किराये पर ये तीनों मूर्तियों के दर्शन हो जाते हैं। श्रीनागनाथजी का विशाल मन्दिर औंडागाँव के बाहर गाँव से मिला ही हुआ है। मोटर मन्दिर के बहुत निकट तक चला जाता है।

लारी से उतर कर मन्दिर में ही चले जाने से जगह ठहरने की और रसोंई आदि की भी मिल जाती है, क्योंकि मन्दिर के भीतर परिक्रमा में कुछ कोठरी ठहरने की बनी हैं; पर शिवरात्रि आदि भीड़ के समय गाँव में भी गृहस्थों के यहाँ ठहरने का प्रवन्ध हो सकता है। कहीं अपनी अनुकूलतानुसार स्थिति ठीक कर पास ही मन्दिर के पीछे के भाग में 'अमृतकुण्ड" है इस तीर्थ में स्नान करना चाहिये। पर इसका यह नियम है कि पंडे लोग पैर डुबाने नहीं देते, जल लाकर बाहर स्नान करते हैं, क्योंकि इसी का जल श्रीनागेश्वरनाथजी में भी चढ़ता है। प्रथमदिन—स्नान "अमृतकुंड" में जो यहाँ का प्रधानतीर्थ है करना चाहिये। और पूजन सामग्री सब ठीक कर भगवान् नागनाथजी के दर्शनों को जाना चाहिये। यहाँ पुजारी तथा पूजा ग्रहण करनेवाले पूर्ववत् "गुरु" शूद्रजाति के ही हैं। जब मन्दिर में प्रवेश करने लगेंगे तो द्वार पर श्रीनन्दीश्वरजी विराजमान मिलेंगे, जोकि देखने से ज्ञात हो जायगा कि वहुत प्राचीन हैं। एक ऊँचे चबूतरे पर मूर्तिस्थिति है। कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर जब मन्दिर पहुँचेंगे तो सामने एक भगवान् विष्णुदेव की मूर्ति मिलेगी जिस मूर्ति का एक हाथ भग्न है। सुना जाता है कि औरंगजेब मुसल-मान बादशाह जब इस मन्दिर को तोड़ने आया; और भीतर घुसा तो उसके पहिले ही पुजारियों ने नागेश्वरनाथजी के छोटे से भूगर्भद्वार को एक शिला से जो उसको ढकने के लिये पहिले ही से वनाई गई थी वंद कर दिया, मन्दिर के भीतर अंधकार था उसने श्रीनागेश्वरनाथजी को नहीं पाकर भगवान् विष्णुदेव की मूर्ति का एक हाथ तोड़, मन्दिर का ऊपरी शिखर ढहा दिया। भगवान् विष्णुदेव के दर्शन के अनन्तर पास ही श्रीनागेश्वरजी का भूगर्भ गृह है। ऊपर एक छोटा सक जलता रहता है पानी

पर उससे अंधकार दूर नहीं होता है, इसलिये संभाल कर पैर रखते हुये, मंदिर के भीतर एक घर सा भूमि के भीतर है उसमें उतरने के लिये चार पांच सीढ़ियाँ हैं वे बहुत ही संकुचित हैं केवल एक ही आदमी एक बार में आ जा सकता है। भीतर खड़े तो नहीं हो सकते परन्तु बैठने के लिये दश पांच मनुष्यों का स्थान है। भीतर दश पांच दीयट घृत के जलते रहते हैं, कुछ लोग पूजा करते और कुछ आते जाते रहते हैं। अतः बड़ी सावधानी से बैठ कर श्रीनागेश्वरनाथजी का विधिपूर्वक पूजन अर्चन धूप, दीप, नैवेद्य आदि अर्पण कर साष्टांग पणिपातादि कर स्तुति करना चाहिये। दर्शन करते हुये चित्त आनन्दित हो जाता है। मूर्ति अत्यन्त प्राचीन खुरदरी, अकृत्रिम एक हाथ से कुछ अधिक ऊँची अत्यन्त स्थूल नहीं है। देखते मन में सात्त्विकभाव उदय हो जाता है; और पापपुंज भस्म हो जाते हैं। मूर्ति की प्राचीनता ही इनके महत्त्व में प्रमाण है। विधिपूर्वक पूजन प्रणामादि के अनन्तर धीरे से बाहर आजाना और प्रदक्षिण कर अपने निवासस्थान पर आ भोजन कर विश्राम करना चाहिये।

दूसरे समय अमृतकुण्ड की शोभा देखना चाहिये, यह छोटा सा सरोवर चारों ओर पक्का बना है सीढ़ियाँ लगी हैं, जल साफ तो है, पर कुछ हरित वर्ण है। जल में पत्थर पड़े रहते हैं उन्हीं पर पैर धर कर लोग जल ले लेते हैं, पैर नहीं डुबाते हैं। मन्दिर की ओर दृष्टि देते ही यह ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन शिल्पकला क्या थी। मन्दिर सुदृढ़ पत्थर का बड़े घेरे में बना है जिसमें तीन ओर द्वार हैं, ऊपर का शिखर जो औरंगजेब ने तोड़ा था, वह पुनः निर्माण हुआ अलग ज्ञात होता है। मन्दिर के नीचे भाग में पैदल सिपाही, उसके ऊपर घोड़े, उससे अनन्तर हाथी आदि

अनेक प्रकार की मूर्तियाँ बनाई गई हैं। कितना प्राचीन होने पर भी वह अपनी स्वाभाविक शोभा का त्याग नहीं करता है। मन्दिर देखने योग्य है। चारों ओर पत्थर की पटियाँ बड़े विस्तार में जड़ी हुई हैं। ऊँचे चबूतरों पर कुछ कोठरी बहुत छोटी छोटी और कुछ खुले टीन का छायादार स्थान है अमृतकुंड के पास ही एक गुसाइं की मठिया है उसमें भी कुछ मूर्तियाँ और एक कूप मीठे जल का अच्छा है, उसमें भी कोई लोग ठहरते हैं। कुछ दूर पास ही में एक और भी तालाव है कुछ मूर्तियाँ भी आस पास भग्नावशेष हैं। पर तालाव का जल अच्छा नहीं है। पास ही औंडा ग्राम है; इसमें छोटे मोटे दूकानदार रहते हैं। खाद्यसामग्री मिल जाती है। यह सब देख अपने आसन में विश्राम करना चाहिये।

दूसरे दिन—प्रभात कार्य से निवृत्त हो, अमृतकुंड में स्नान कर शिवाभिषेक श्रीरुद्राध्याय के अनुसार करना अथवा कराना चाहिये। तदनन्तर कुछ हवन ब्राह्मण भोजन, दक्षिणादि से वहाँ के लोगों को संतुष्ट करना; अनन्तर भोजन विश्राम करना और वहाँ का आनन्द लेना चाहिये। चारों ओर छोटी छोटी पहाड़ियाँ बड़ी सुन्दर ज्ञात होती हैं। सायंकाल आरती का दर्शनानन्द ले शयन करना चाहिये। श्रीनागेश्वरनाथजी का होना समुद्र के मध्य दारुकावन में शास्त्रोक्त है। यहाँ कैसे विराजमान हुये? इसके उत्तर में वहाँ के लोग यह कहते हैं कि मध्यमपांडवभीमसेनजी यहाँ लाये थे। पर इसमें कोई प्रमाण नहीं है। हो सकता है कि महासेन राजा के पुत्र वीरसेन जिनका लेख उक्त कथानक में आचुका है वे लाये हों। उन्हीं को लोग भीमसेन कहते हों। अस्तु—तीसरे दिन प्रभातकृत्य से निवृत्त हो दर्शन पूजन परिक्रमण कर कुछ खान पान करके मोटर के द्वारा यथेष्ट स्थानों में चल देना

चाहिये। इस मन्दिर का प्रबन्ध एक कमेटी के आधीन है, और कुछ जीविका का प्रबन्ध अच्छा ही सुनाई पड़ा, पर प्रबन्ध प्रशंसनीय नहीं, मेरी यात्रा में ज्ञात हुआ, कि दीपकादि का प्रबंध भी मन्दिर के भीतर ऐसा नहीं था कि जिससे यात्री अपने पैर निर्भय हो रख सकें। सन् १९३८ में यह यात्रा की गई थी तब ऐसी दशा प्रतीत हुई। मन्दिर के सामने चार छः छोटे मोटे मन्दिर हैं; उनमें भी ठीक रूप से सबकार्य होने की आवश्यकता है॥ अलम्।

११-सेतुबन्धे च रामेशम्

श्रीरामेश्वरनाथज्योतिर्लिङ्ग-प्रादुर्भाव

सूतजी बोले, हे श्रेष्ठऋषियो ! श्रीशंकरजी का माहात्म्य सुनो। किसी समय (त्रेतायुग में) रावण को मारने के लिए; अट्ठारहपद्म बड़े बलवान् सुग्रीवादि वानरों और श्रीलक्ष्मणजी के साथ श्रीरघुनाथजी दक्षिण समुद्र के तट में गये॥ १॥ २॥ वहाँ जाकर श्रीरघुनाथजी जब तट में स्थित हुए, तब वानरों और श्रीलक्ष्मणजी से उपास्यमान श्रीरघुनाथजी मन में विचार करने लगे, कि श्रीजानकीजी कहाँ गयीं, और किस तरह, कब मिलेंगी॥ ३॥ ४॥ समुद्र तो अगाध है, और वानरीसेना को पार जाना है, रावण राक्षस इतना प्रबल है कि कैलासपर्वत का उठानेवाला है; क्या होगा, इस प्रकार विचार करते हुए, अङ्गदादिप्रभृति वानरों से युक्त श्रीलक्ष्मणजी के साथ तीर में स्थित होकर बोले कि हे लक्ष्मण ! जल पीने की इच्छा है। ज्योंही श्रीरामजी के मुखारविन्द से यह सुना त्योंही वानरलोग दशों दिशाओं में दौड़ पड़े॥ ५॥ ६॥ ७॥ और जल लाकर प्रणाम कर श्रीरघुनाथजी

के सम्मुख स्थित हो बोले कि हे स्वामिन्! आप की आज्ञा से जल ले आये, उसे ग्रहण करो ॥ ८ ॥ श्रीरघुनाथजी ने उस जल को ग्रहण कर ज्योंही पीना चाहा, त्योंही यह स्मरण हो आया कि अभी श्रीशंकर का दर्शन नहीं किया, कैसे जल ग्रहण करें; ऐसा कह कर परमात्मा श्रीरघुनाथजी ने जल को त्याग दिया ॥९-१०॥ और आवाहनादिक उपचारों की कल्पना कर पार्थिवपूजा श्रीशंकरजी की श्रीरघुनाथजी ने किया ॥ ११ ॥ प्रणामादि दिव्य स्तुतियों से भगवान् शंकर को संतुष्ट कर परमप्रसन्नता से देवेश श्रीशंकर जी से प्रार्थना किया ॥ १२ ॥ हे स्वामिन्! समुद्र अगाध भरा है. और राक्षस बड़ा बलवान् है, हमारे युद्ध का साधन यह वानरी सेना चंचल है। इसलिए सुन्दर व्रत धारण करनेवाले शम्भो! आप हमारी सहायता कीजिए। आप का भक्त यह रावण मनुष्यों से दुर्जय है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे शंकर! पुण्य में आप को सदा पक्षपात रखना चाहिये; ऐसा कह प्रणामादि कर परिक्रमा किया और उच्चस्वर से जय-जय शम्भो, ऐसा कहते स्तुति कर मन्त्र और ध्यान में लीन हो गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ तदनन्तर पुनः पूजा करके जब 'गल्लनाद' (गाल बजाया) तब ज्योतिस्वरूपश्रीदेव-देव शंकरजी, साङ्ग अपने परिवार सहित जैसा उनका ध्यान कहा गया है, वैसा रूप धारण कर प्रकट हुये और हे रघुनाथ जी! कल्याण हो ऐसा वचन बोले ॥ १७ ॥ १८ ॥ शिवधर्म में तत्पर श्रीरघुनाथजी ने श्रीशंकर जी का वह रूप देखकर सर्व प्रकार से पुनः पूजा किया। और विविध भाँति से स्तुति कर प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया, और जय की प्रार्थना किया, तब श्रीशंकर जी ने कहा हे रघुनाथ जी! आप का जय हो ॥ १९ ॥ २० ॥ और श्रीशंकरजी का दिया हुआ जल उनकी आज्ञा से पान किया; और फिर यह प्रार्थना

किया कि प्रभो ! लोककल्याणार्थ सबके पापनाश करने के लिए हे करुणासिन्धु ! हे देवेश आप यहाँ स्थित होवें ॥ २१ ॥ २२ ॥ जब श्रीरघुनाथजी ने ऐसा कहा तब श्रीशिवजी वहीं लिंग-रूप हो स्थित हो गये। और श्रीरामेश्वर जी इस नाम से जगत्प्रसिद्ध हुए ॥ २३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ऋषियो ! यह श्रीरामेश्वरजी की उत्पत्ति आपलोगों से कही जो श्रवण करनेवालों के पाप को नाश करनेवाली है ॥

श्रीरामेश्वरधाम

ग्यारहवें ज्योतिर्लिङ्गश्रीरामेश्वरजी का वर्णन

श्रीरामेश्वरजी (श्रीरामनाथजी) के जाने का मार्ग प्रत्येक प्रान्त के लोगों का प्रायः मद्रास और मदुरा होकर ही है। किराया तथा गाड़ियों के परिवर्तन एवं समय उनकी यात्रा स्थान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से होगा; वह यात्री स्वयं निर्धारण कर लेंगे। प्रथम लोग मद्रास से मदुरा और मदुरा से ७२ मील श्रीरामनाथ धाम तक पैदल जाया करते थे। उसके अनन्तर "मण्डपम्" स्टेशन तक लोग गाड़ी से जाते थे, और वहाँ से हरबोला की खाड़ी में स्टीमर चलता था, उसमें बैठ वह खाड़ी पार कर, उस पार गाड़ी द्वारा श्रीरामेश्वरजी पहुँचते थे। हरबोला की खाड़ी के स्टीमर कार्यकारी यात्रियों से कुछ लिप्सा वश उन्हें तंग किया करते थे। विना उनसे कुछ लिये उन्हें पार नहीं ले जाते थे। इस दशा में खाड़ी के रेते में धूप सहन करते हुये बैठे यात्री उनकी पूजा-भेंट अवश्य ही चढ़ा, किसी तरह उस खाड़ी को पार किया करते थे। और ये क्रूरप्रकृतिक यात्रियों की दीनदशा और दुःख पर कुछ

ध्यान न देकर अपना स्वार्थ साधन कर लेते थे। स्टेशन तक के लोग भी इस षड्यंत्र में मिले हुये रहते थे। हमारी प्रथम यात्रा में जब इस प्रकार का अवसर आया, उस समय यात्री लगभग १०० एक सौ थे उन लोगों ने अपनी ठगरीति के अनुसार प्रत्येक यात्री से चार या आठ आने मांगना आरम्भ किया; उस समय हमारे श्रीस्वामीजी भी यात्रा में थे; उनके सदुपदेश से यात्रियों ने इन्हें कुछ न दिया, और प्रत्येक यात्री के पास श्रीरामेश्वरजी तक का टिकट रहने पर भी इन धूर्तों ने स्टीमर को खाली लौटा दिया। तब यात्रियों ने आपस में -) का चंदा कर मद्रास को अरजण्ट तार देना आरम्भ किया। उस दशा में ये लोग गिड़गिड़ाने लगे और पैरों पड़ कर नम्रता के साथ पुनः स्टीमर ला पार ले गये। यह दशा थी। दक्षिण में और भी कई स्थानों पर स्टेशनों के लोगों का इस प्रकार का वृत्तान्त देखा गया। पर यात्रियों को उचित है कि जब ऐसे अवसर आवें तब ऐसे धूर्तों, ठगों को एक कौड़ी भी न देवें; और वहाँ की गवर्नमेण्ट को सूचना देकर इन दुष्टों की दुष्टता का सर्वथा अंत कर दें। पर अब तो पुल खाड़ी में बँध गया है, और गाड़ी श्रीरामनाथधाम तक सीधी चली जाती है।

कुछ लोगों का कथन है कि 'सेतु' हरबोला की खाड़ी से ही आरम्भ हुआ था, क्योंकि उसके कुछ खण्ड दिखाई पड़ते थे; उन्हीं को इकट्ठा कर रेलवे ने पुल बना गाड़ी का मार्ग बनाया है; परन्तु इस बात में कोई बलवत्प्रमाण नहीं है; और न आज दिन उपलब्ध सीलोनद्वीप के लंका होने में ही प्रमाण है। क्योंकि वाल्मीकीयइतिहास में शतयोजन का पुल श्रीरघुनाथजी ने पाषाण पर्वतों का बंधाया था, किन्तु सीलोनद्वीप (परलंका) हो सकती है। जिसे हम एक स्थान में पीछे लिख चुके हैं।

कुछ लोगों का कथन है कि श्रीरामनाथजी से "देपुर" या देवीपत्तन पांच कोस पर है। इस जगह पर देवी ने महिषासुर से युद्ध किया था। और इसी जगह पर भगवान् ने ९ पाषाण स्वयं रखकर पुल का प्रारम्भ कराया था। अस्तु, जब गाड़ी रामेश्वधाम स्टेशन पर पहुँच जाती है तब वहाँ से मंदिर के पश्चिमीय द्वार का प्रोन्नत शिखर जो १०० फुट ऊँचा है देख पड़ता है। देखते ही यात्रीगण, हर्षगद्गदकण्ठों की तुमुलध्वनि से ("बाबारामनाथ की जय") से गगनमुखरित कर देते हैं।

बड़े ही भक्ति-भाव से प्रणाम करते हैं। स्टेशन से उतरकर यात्रियों को अपने ठहरने के स्थान का प्रबन्ध करना चाहिये। पण्डा लोग स्टेशन पर डटे रहते हैं और यात्रियों को अपनी-अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं। गाड़ियों में भी बड़ी-बड़ी दूर से श्रीरामेश्वरजी के पण्डे मिल जाते हैं। श्रीरामेश्वरधाम में ठहरने के स्थान बहुतेरे हैं, कई धर्मशालायें बनी हैं, और पण्डों के मकान हैं। कुछ दूर चलने पर श्रीरामझरोखे की सड़क मिलती है, पास ही बागला की धर्मशाला बड़ी स्वच्छ और सुखद बनी है। यहाँ ठहरना अच्छा है। इस प्रकार अपनी स्थिति ठीक कर प्रथम दिन का कार्य निम्नलिखित प्रकार से करना चाहिये।

प्रथमदिन-कर्तव्य

अपनी इच्छानुसार पण्डा की यदि आवश्यकता हो तो किसी को साथ ले श्रीलक्ष्मणतीर्थ जाना चाहिये, वहाँ जाकर मुण्डन, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पिण्डदानादि, देव-पितृकार्यों को समाप्त कर मन्दिर में दर्शनार्थ जाना चाहिये। बहुत से लोग 'गंगाजल' जो श्रीगंगोत्रीजी से लाते हैं; वह साथ में ले लेते हैं। पर यहाँ अन्यस्थानों की भांति यात्रीगण अपने हाथों से स्नान-पूजा नहीं करने पाते। वहाँ के पुजारी ही यात्रीगणों को दिखा कर

उनकी जल-पूजादि कर देते हैं। यहाँ तक कि नाम-गोत्रादि पूँछे बिना दर्शन भी सन्निकट से नहीं होने देते; तिसमें ब्राह्मणों को कुछ सन्निधान में जाने देते हैं। मन्दिर में जाते समय मार्ग बड़ा ही सुन्दर मिलता है। दोनों ओर नारियल की वृक्षावली और सुन्दर गृह बने हैं, जिन्हें देखते ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। तदनन्तर मन्दिर के द्वार पर आ बड़ी नम्रता और भक्ति भाव से युक्त हो भगवान् की द्वारचौखट को प्रणामादि कर, थोड़ी देर द्वार शिखर की बनावट तथा छटा का दर्शनानन्द लेना चाहिये। बड़े-बड़े ऊँचे गगनचुम्बी द्वारशिखरों के देखते ही हृदय में विस्मय की धारा बह पड़ती है। जिस द्वार से प्रवेश करते हैं वह पश्चिम-द्वार है। पूर्वीयद्वार की ओर भगवान् श्रीरामनाथजी का सभा मंदिर है। और भी उत्तर, दक्षिण द्वार हैं। मंदिर का घेरा बड़ी विस्तृतभूमि को आक्रमण कर स्थित है। यह मंदिर बड़े विस्तार और सुचारुता के साथ बना है। मंदिरद्वार के बामपार्श्व में कुछ बंगले तथा देव, देवियों की मूर्तियां हैं। प्रवेशद्वार पर बड़े-बड़े राजा, महाराजाओं की मूर्तियां स्तम्भों में इस भांति खचित हैं कि मानो वे मन्दिर को धारण कर रही हों। यह होना आवश्यक इसलिये है कि यह मंदिर ही श्रीराजराजेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित है। इनके नीचे नाना भांति के चित्र जिनमें श्रीरघुनाथजी श्रीजनकतनयाजी के साथ श्रीरामेश्वरजी की स्थापना कर रहे हैं; बिकते रहते हैं। और भी यहाँ शंख, शुक्तियाँ, मालायें मूर्तियाँ बिकती रहती हैं। आगे परिक्रमा बड़ी सड़क सदृश मिलती है। वहाँ गणपति की एक मूर्ति विराजमान है जिसे हटाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वह न हट सकी, तब नीचे बारूदीसुरंगे बिछा कर उड़ाना चाहा पर मूर्ति का कुछ नीचे का भाग तो टूटा पर मूर्ति टल न सकी,

इस पर बड़ा हलचल मचा था। पुरानी परिक्रमा जो अभी बायें ओर से आरम्भ की जाती है, उसे तोड़ अब दूसरी बड़ी अद्भुत परिक्रमा बनाने का उद्योग हो रहा है। जहाँ बांई परिक्रमा समाप्त होती है, उसके कोने पर, श्रीरामजानकी की शिवप्रार्थना युक्त स्थापिका मूर्तियाँ बड़े ही भाव-मर्म को स्पर्श करने वाली विद्यमान हैं।

श्रीरघुनाथजी को सभक्तिसाष्टांग कर आगे जहाँ यह मार्ग समाप्त होता है; वहीं भगवान्‌भव की ताण्डवनृत्ययुक्त मूर्ति विद्यमान है। उनका दर्शन कर पूर्वीय द्वार पर जो पास ही विद्यमान है; श्रीहनुमान्‌जी की बड़ी विशाल मूर्ति मिलेगी; इनका दर्शन अर्चन करने के अनन्तर पूर्व ओर द्वार पर समुद्रीय अनुपम दृश्य दिखाई पड़ता है। सभामन्दिर यहीं से जाया जाता है, प्रथम कार्तिस्तम्भ मिलता है, उसे प्रणाम, दक्षिणावर्त देते श्रीनन्दिकेश्वरजी का दर्शन करना पड़ता है। इनके सदृश विशाल उन्नत नन्दिकेश्वरजी कहीं नहीं देखे जाते; इनके सींग तो छत में भिड़े हुये हैं। ये अपनी नासिका चाट रहे हैं; बैठक देखने योग्य है; इनको देखकर बड़ा आनन्द तथा विस्मय होता है। इनके सामने एक शिवमूर्ति है; उनका दर्शन अर्चन कर पास ही 'हरबोला' राक्षस के पास जाकर उसके सिर पर लोग थप्पड़ लगाते हैं। क्योंकि शंकरजी से इसने ऐसा वर माँगा था, अर्थात् अपने पापों के तथा प्रमाद के दूर होने के लिये यही वर मांगा कि हे प्रभो! आपके दर्शक मेरे सिर, थप्पड़ मार कर ही आपके दर्शनों को जाँय जिससे मेरा प्रमाद और पाप दूर हो जाय तथा आपकी सद्भक्ति में तन्मय रहूँ। इसके आगे की द्वारचौखट पर एक श्याम पाषाण इतना सुडौल और स्वच्छ लगा है कि उसमें मुख देख पड़ता है। ऊपर चार छोटी सीढ़ियों को चढ़कर चारद्वारों के भीतर

विराजमान श्रीरामनाथज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन सर्वसाधारण को कराया जाता है। श्रीरामेश्वरजी की मूर्ति स्थूल नहीं है; ऊंचाई भी लगभग हाथ सवा हाथ से अधिक न होगी। कुछ श्यामता धारण किये बड़ा ही अद्भुत दर्शन है। मूर्ति नीचे के भाग में सुवर्ण से मंडित है। राजतत्रिपुंडयुक्त, नानासुगन्धमिश्रित द्रव्यों से अर्चित इतना हृदयानन्दप्रद दर्शन है कि दर्शक के भाव स्वयं इस भांति के हो उठते हैं कि अब मैं पापरहित और कृतकृत्य हो गया। भक्त-हृदय प्रेमसिन्धु में निमज्जन करता हुआ कुछ काल के लिये तन्मय हो, मनोवागगोचर सुख का अनुभव करता है। इस भांति दर्शन, स्तवन के अनन्तर उधर पीठ न करते हुये नीचे उतरना चाहिये। श्रीरामनाथजी के दर्शनानन्तर पार्श्वस्थित श्रीकाशी-विश्वनाथजी का दर्शन करना चाहिये। ये काशीविश्वनाथजी श्रीहनुमानजी की लाई हुई मूर्ति हैं। कुछ बिलम्ब होते देख श्रीरघुनाथजी ने सैकतलिंग श्रीरामेश्वरजी को प्रतिष्ठित कर दिया त्योंही हनुमान्जी श्रीकाशीविश्वनाथजी को लाये, परन्तु प्रतिष्ठितमूर्ति देख श्रीरघुनाथजी से क्षुब्ध हो बोले कि आपको यदि ऐसा ही करना था तो हमको काशीविश्वनाथ लाने क्यों भेजा? श्रीरघुनाथजी ने कहा कि हे हनुमान्जी! कुछ देर होते देख हमने ऐसा किया। अस्तु अब तुम इस हमारी स्थापित मूर्ति को उखाड़ दो और इनके स्थान में तुम्हारे लाये श्रीकाशीविश्वनाथजी को पधार दो। श्रीहनुमान्जी आवेश में थे पुच्छ में लपेट श्रीरामेश्वरजी को उखाड़ना चाहा, पर पूँछ कुछ टूट गई और मूर्ति टस से मस न हुई; तब बड़े लज्जित हुये और श्रीरामजी से क्षमा प्रार्थना मांगी। श्रीरामकृपा से पूँछ पुनः ठीक हो गई। तब श्रीरामजी ने श्रीकाशी-विश्वनाथजी को भी श्रीरामेश्वरजी के बगल में पधरा दिया। यह कथा श्रीरामेश्वरमहात्म्यादि ग्रन्थों में लिखी है। इसके

अनन्तर भगवतीनगेन्द्रनन्दिनीपार्वतीजी का अतिमनोहर दर्शन है। शुक्रवार के दिन श्रीभगवतीजी की सवारी निकलती है इसका अवश्य दर्शन करना चाहिये। ९ बजे के लगभग सवारी बड़े समारोह से निकलती है। आगे नन्दिकेश्वरजी जिन पर ध्वजा सहित वाद्य रहते हैं। पीछे नागेश्वर और मंदील वाद्य बजता है और भी अनेक प्रकार की सजावटों के साथ बीच में दो वेश्यायें भी रहती हैं। पर ये वेश्यायें नाचना-गाना नहीं करतीं। कभी-कभी कुछ हाव-भाव दिखा दिया करती हैं। तब सारी जनता भगवतीजी के ध्यान से विचलित हो जाती है। देव मन्दिरों में इस भाँति के दृश्यों का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। परन्तु समय के प्रभाव को नमस्कार है। सवारी १२ बजे तक लौटती है। इस भांति दर्शनादि कृत्यों से निवृत्त हो विश्राम करना चाहिये। प्रथम दिन इतना कार्य कर सकते हैं।

द्वितीयदिवस कार्य

अपने नित्यकार्य को समाप्त कर पण्डा के साथ जाकर मंदिर के भीतर ही विद्यमान् २४ तीर्थों में स्नानादि क्रिया करनी चाहिये। तीर्थनामावली निम्न प्रकार से है। यथा—(१) चक्रतीर्थ (२) वेतालवरदतीर्थ (३) पापनाशनतीर्थ (४) सीतासरतीर्थ (५) मंगलतीर्थ (६) अमृतवापिकातीर्थ (७) ब्रह्माण्डतीर्थ (८) हनुमत्कुण्ड (९) अगस्त्यतीर्थ (१०) श्रीरामतीर्थ (११) श्रीलक्ष्मणतीर्थ (१२) जटातीर्थ (१३) श्रीलक्ष्मीतीर्थ (१४) अग्नितीर्थ (१५) द्वितीय चक्रतीर्थ (१६) श्रीशिवतीर्थ (१७) शङ्खतीर्थ (१८) यमुनातीर्थ (१९) गंगातीर्थ (२०) गयातीर्थ, (२१) कोटितीर्थ (२२) साध्यामृततीर्थ (२३) मानसाख्यतीर्थ, (२४) धनुष्कोटितीर्थ। इन सब तीर्थों को कर भोजन विश्राम करें। एक जटातीर्थ और भी है जो मन्दिर से लगभग १ मील पर है। सुना जाता है कि यहाँ पर श्रीरघुनाथजी

ने अपनी जटायें धोई थीं। यह मरुभूमि-सा है। यहाँ एक ओर समुद्र और दूसरी ओर बालू के टीले हैं। इन पर लोग बैठते हैं। दृश्य अच्छा है। इस प्रकार दर्शनकृत्य समाप्त कर सायंकाल भगवान् श्रीरामेश्वरजी का दर्शन, मन्दिरनिरीक्षण, समुद्रादि का आनन्द लेकर विश्राम करना चाहिये।

तृतीयदिवस कार्य

अपने प्रातःकालीन कृत्य को समाप्त कर तृतीयदिन धनुष्कोटि तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। यह धनुष्कोटितीर्थ इस भाँति प्रादुर्भूत हुआ कि जब श्रीरघुनाथजी लंका गये थे तब यहीं पर सेतु बना था और उसी पर से वानरीसेना सहित पार गये। लंकाविजय के अनन्तर जब पुष्पक विमान से लौटे, तब विभीषण जी के कहने से उस सेतु को अपने धनुष की कोटि (अग्रभाग) से तोड़ दिया था; तब से यह धनुष्कोटि तीर्थ कहाया। यहाँ जाने के लिये दो तरह का मार्ग है। रेलगाड़ी तथा 'नाव'। पहिले जब रेल नहीं गई थी, तब यात्रियों को बैलगाड़ी, तथा "नौका" ही शरण थी, इस दशा में यात्रियों को एकरात एकतेली की धर्मशाला में ठहरना तथा वहाँ के नियमानुसार उसका अन्न भी ग्रहण करना पड़ता था पर अब वे बातें नहीं हैं। वारिश आदि दैवी उत्पातों से कभी-कभी लाइन टूट भी जाती है, इस दशा में नौका से जाना पड़ता है। मार्ग में मछली मारने वाले मछलियों को मार-मारकर पहाड़ सदृश ढेर लगा देते हैं, उनकी दुर्गन्धि बड़ी कड़ी एवं असह्य होती है; इससे यात्रियों को महाकष्ट होता है। इसलिये जहाँ तक बने रेलवे से जाना अच्छा रहता है। ऐसे महातीर्थ स्थलों में भी इस प्रकार की हिंसा यह बड़े खेद की बात है। जब धनुष्कोटितीर्थ तक पहुँचते हैं तब वहाँ का अनुपम दृश्य देख

दर्शक भौंचका सदृश हो जाता है। यहाँ पर एक ओर रत्नाकर और दूसरी ओर महोदधि समुद्र गरजते रहते हैं। इन्हें अरब सागर और बङ्गोपसागर भी कहते हैं। ये दोनों दो प्रतिपक्षियों की भाँति एक दूसरे से ठोकर लिया करते हैं। अथवा यह कहा जाय कि अतीव प्रेमासक्त की भाँति एक दूसरे को गले लगाया करते हैं। सुना जाता है कि रत्नाकर और महोदधि इन दोनों सागरों में छः महीने तक एक में और उतने ही समय दूसरे में लहरें प्रचण्ड वेग धारण करती हैं; यह प्राकृतिक नियम है। यहाँ पर स्वर्णनिर्मित धनुष की पूजा पण्डा लोगः यात्रियों से करवाते हैं। धनुष यात्री चाहे अपने पास बनवाकर रखते हैं या कुछ मूल्य पर पण्डों से ले लेते हैं। समुद्र का स्नान करते सावधानी से लहरें लेनो चाहये। इसके अनन्तर यात्री अपने वासस्थान पर लौट आते हैं। धनुषकोटि के समीप ही एक बाबाजी कुछ चने और सेम के बीजादि यात्रियों को प्रसाद में बाँटा करते थे।

चतुर्थदिवस कार्य

चौथे दिन यदि बन सके तो मन्दिर में काशीविश्वनाथादि किसी मूर्ति को श्रीरामेश्वरजी समझ शिवाभिषेकादि रुद्राष्टाध्यायी के अनुसार करा, ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन दक्षिणादि से संतुष्ट करना चाहिये। यह तीर्थकार्य है। यहाँ एक पाठशाला भी है जिसमें विद्यार्थियों को वैदिकशिक्षा मिलती है। धनी, मानी यात्रीगण अपनी इच्छानुसार यहाँ भी कुछ दानादि दे सकते हैं। दूसरे समय लगभग चार बजे लोग रामझरोखे जाया करते हैं। लोग कहते हैं कि—

"रामझरोखे बैठिकर सबका मोजरा लेंय।
जाकी जैसी चाकरी ताको तैसा देंय"

मार्ग में बबूल के कांटे भी कहीं कहीं पड़ते हैं। आगे सुग्रीव-कुण्ड मिलता हैं; इसमें मार्जनादि लोग करते हैं। रामझरोखे के स्थान पर बैठकर श्रीरघुनाथजी ने अपनी वानरीअपारसेना का प्रणाम स्वीकार करते उनको आशीर्वचन तथा प्रोत्साहनादि दिये थे। यह मन्दिराकार विशालोन्नत स्थान पर है। यहाँ बैठने में जो शान्ति का ऐकान्तिक सुखानुभव होता वह अनुभवगम्य है। बड़ा आनन्दप्रद स्थान है सायंकाल अपने वासस्थान में आ, प्रतिदिन की भाँति देवदर्शन करने चाहिये। श्रीरामेश्वरजी तथा सेतुदर्शन का महत्त्व बड़ा ही शास्त्रों में गाया गया है। श्रीरघुनाथजी ने स्वयं इस स्थान की बड़ी महिमा बखानी है। इनके दर्शन का फल सायुज्यमुक्ति है। श्रीरामेश्वरजी में गंगाजल चढ़ाने का वड़ा महत्त्व है। श्रीगोस्वामी-तुलसीदासजी लिखते हैं, कि—

"जो गंगाजल आनि चढ़ाई। सो सायुज्य मुक्ति नर पाई"

श्रीरामेश्वरधाम में उक्त लिखित ही तीर्थ आज दिन मिलते हैं। जिन यात्रियों की इच्छा हो वे अधिक समय भी निवास कर सकते हैं। अन्यथा तीर्थकार्य समाप्त हो जाने पर चल देना चाहिये। श्रीरामेश्वरजी से विदा मांग लगभग १० बजे स्टेशन पहुँचना और अधुनिक रेलवे सेतु को भी किंचित् देख लेना चाहिये। अलम्—

१२—"घुश्मेशञ्च-शिवालये"

श्रीघुश्मेश्वरज्योतिर्लिंङ्गप्रादुर्भाव

भाषार्थ—सूतजी बोले कि हे ऋषिवर्यों ! अब श्रीघुश्मेश्वरजी जो ज्योतिर्लिङ्ग कहे गये हैं, उनका सुन्दर महत्त्व श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

हे महर्षियो ! दक्षिणदिशा में "देव" नामक एक पर्वत है। उस पर्वत के समीप भारद्वाज कुल में उत्पन्न ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ सुधर्मा नामक ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्री सुदेहा नाम्नी बड़ी साध्वी धर्मपरायण थी ॥ २ ॥ ३ ॥ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सुधर्मा देवता और अतिथि-पूजन, वेदमार्ग में रत और नित्य ही अग्निहोत्रादि क्रिया करते थे ॥ ४ ॥ त्रिकाल बड़ी श्रद्धा से युक्त सर्व कर्म करते हुए सूर्य के समान द्युतिमान् शिष्यों को पढ़ानेवाले वेदशास्त्रों में प्रवीण थे ॥ ५ ॥ धनी, दानी, सज्जन के लक्षणों से युक्त सुधर्माजी की, धर्माचरण करते बहुत आयु व्यतीत हो गई ॥ ६ ॥ परन्तु कोई पुत्र नहीं हुआ, स्त्री का ऋतुकाल निष्फल हो जाता था, पर सुधर्मा को इस बात से कोई दुःख नहीं हुआ क्योंकि वे ज्ञानवान् थे ॥ ७ ॥

परन्तु सुदेहा गर्भ न रहने के कारण बहुत दुःखी हुई, और सदैव स्वामी को इसके लिए यत्न करने को प्रार्थनाकरती थी ॥ ८ ॥ सुधर्मा ने स्त्री के आग्रह पर उसको डाट कर कहा कि पुत्र क्या करेगा, कौन माता, कौन पिता, कौन पुत्र कौन किसका बन्धु और प्रिय है ॥ ९ ॥ तदनन्तर किसी समय सुदेहा आनन्द वार्ता करने के लिए पड़ोसियों के घर गई और वहाँ बातों-बातों विवाद चल पड़ा ॥ १० ॥ एक पड़ोसी की स्त्री ने स्त्रीस्वभाव के अनुसार सुदेहा का तिरस्कार करती हुई बोली

कि हे अपुत्रिणि ! (हे वन्ध्ये) तू गर्व क्यों करती है, मैं पुत्रवती हूँ ॥ ११ ॥ मेरा धन पुत्र भोग करेगा और हे बन्ध्ये ! तेरा धन कौन भोग करेगा; केवल राजा ही हरण करेगा इसलिए तेरे गर्व को धिक्कार है ॥ १२ ॥

तब सुदेहा तिरस्कृत हो, घर आकर अपने स्वामी से सब वृत्तान्त आदर पूर्वक दुःख के साथ कहा ॥ १३ ॥ और बोली जिस किसी प्रकार पुत्र उत्पन्न करो, तुम मुझको अत्यन्त प्रिय हो, नहीं मैं हे स्वामिन् ! देह त्याग कर दूँगी ॥ १४ ॥ जब सुदेहा ने इस प्रकार कहा तब सुधर्मा नामक ब्राह्मण ने चिन्ता से युक्त होकर अग्निदेव के सामने दो खिले हुए फूलों को रक्खा ॥ १५ ॥ और मन में दक्षिण ओर वाले फूल को पुत्र फल देनेवाला धारण किया, ऐसा करके उन्होंने अपनी स्त्री से कहा ॥१६॥ कि इन दोनों पुष्पों में एक फलप्राप्ति की इच्छा से ग्रहण करो, उसने मन में यह ध्यान करके कि मेरे पुत्र हो ॥ १७ ॥ पुरुष ने जिस फूल को पुत्रफलप्रद चितवन किया था, उसे नहीं ग्रहण किया, यह देख सुधर्मा ने ऊँची स्वास लिया ॥ १८ ॥

और कहा कि ईश्वर की रचना अन्यथा नहीं हो सकती, हे प्रिये ! तुम पुत्र की आशा को छोड़कर भगवान् की सेवा करो ॥१९॥ पर सुदेहा ने अपने आग्रह को न छोड़ा, और कहा कि यदि मेरे पुत्रयोग नहीं है तो हमारी अनुमति से आप दूसरा विवाह कर लो ॥२०॥ जब उसने इस तरह प्रार्थना किया, तब सुधर्माने सुदेहा अपनी प्रिया से कहा, कि तब तो हम दोनों को दुःख निश्चित ही उपस्थित समझो ॥ २१ ॥ इसलिए हे प्रिये ! तुम हमारे धर्माचरण में विघ्न न करो, ऐसा निवारण करने पर भी, वह अपने भाई की पुत्री को लाकर स्वामी से बोली कि इसको स्वीकार करो, तब सुधर्मा ने कहा कि हे प्रिये ! तुम इस समय ऐसा कहती हो, पर जब यह

पुत्रवती होगी तब तुम इससे अवश्य ही ईर्ष्या करोगी। इस तरह कहने पर सुदेहा ने कहा कि यह हम को घुश्मा प्रिय है क्योंकि यह अपनी बहिनों में ज्येष्ठ है; इसका दासीपन मुझे स्वीकार है; इसमें सन्देह नहीं है। तुम निश्चयपूर्वक अपनी पत्नी बनावो ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करने पर सुधर्मा ने घुश्मा को स्त्री रूप से ग्रहण किया। कनिष्ठा (छोटी घुश्मा) नाम्नी पत्नी ने अपने स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर एक सौ एक (१०१) पार्थिवशिव नित्य ही पूजन करने लगी, पूजन के अनन्तर पास के तालाब में पार्थिव विसर्जन करती थी ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार कुछ काल करने के अनन्तर उसको गर्भ का लक्षण दिखाई देने लगा, और शंकर की कृपा से उसके पुत्र हुआ ॥२८ ॥ पुत्र बड़ा सुन्दर, सौभाग्यवान् और सद्गुणों का पात्र था, जब पुत्र हुआ तब सुदेहा उससे स्पर्धा करने लगी ॥ २६ ॥

श्री सूतजी बोले कि—सुदेहा उस बालक का रूपादि देख, उसका हृदय जलने लगा ॥ ३० ॥ ऐसा हो ही रहा था कि ब्राह्मण लोग उस बालक के विवाहार्थ आये, और विधिपूर्वक उसका विवाह हो गया ॥ ३१ ॥ सुधर्मा घुश्मा के साथ बड़े आनन्दित हुये, घुश्मा तो मन ही मन इस कार्य से बड़ी प्रसन्न हुई; पर सुदेहा बड़ी दुःखी हुई ॥ ३२ ॥ जब घर में इधर उधर पुत्रवधू चलती थी, उसको देखकर वह अत्यन्त दुःखी हुई, और हा, मैं मारी गई ऐसा कहकर गिर पड़ती थी ॥ ३३ ॥ मेरे हृदय की अग्नि घुश्मा के आँसुवों से ही शांत हो सकती है, और किसी दूसरे प्रकार से शांत नहीं हो सकती ॥ ३४ ॥

ऐसा निश्चय कर सुदेहाने एक दिन अपनी स्त्री के साथ सोये हुए पुत्र को बड़ी तेज छूरी के द्वारा काट डाला ॥ ३५ ॥

और उसके अंगों के टुकड़ों को उसी तालाव में जहाँ घुश्मा नित्यपार्थिव विसर्जन किया करती थी, फेंक आई ॥ ३६ ॥ और आकर वह सुखपूर्वक सो गई, प्रभातकाल में जब उसकी स्त्री जागी, तो रुधिर से भीगी और कटे हुये अंगों के टुकड़ों से युक्त शय्या को देख अत्यन्त दुःखी हुई, और अपनी सास सुदेहा जिसने यह किया था, उससे जाकर बोली कि आप का पुत्र कहाँ गया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ देहखण्डों से युक्त खून से भीगी शय्या देख पड़ती है, तब सुदेहा ऊपरी भाव से 'हा हा' मैं मारी गयी यह दुष्ट कार्य किसने किया, ऐसा कह दुःख प्रकट करने लगी, पर मन में बड़ी प्रसन्न थी ॥ ३९ ॥ ४० ॥

घुश्मा उस समय अपने पार्थिव शिवपूजन में लगी थी, अपनी पुत्रवधू का दुःखपूर्वक रोदन विलाप सुनकर भी वह अपने आसन से विचलित नहीं हुई ॥ ४१ ॥ और हे मुनीश्वरो ! उसका मन भी कुछ उत्सुकता को नहीं प्राप्त हुआ, और उसका स्वामी सुधर्मा भी जब तक नियम विधि समाप्त हो, तब तक उसी रूप में स्थिर रहे ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! जब दोपहर का समय हो गया, तब अपने पूजन को समाप्त कर घुश्मा ने उस खून खच्चर युक्त भयंकर शय्या को देखा, पर तब भी उसने दुःख नहीं किया ॥ ४३ ॥ अपने पूजित पार्थिवों को लेकर वह नित्य के तरह विसर्जन करने गई और विसर्जित करके ज्यों ही लौटने लगी, त्योंही सरोवर के तट में पानी के भीतर उसने अपने पुत्र को देखा, और बोला कि हे मातः ! आवो और हमको मिलो हम मरकर जी उठे हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

घुश्मा अपने पुत्र को इस प्रकार जी कर कहते हुये सुन, जिस प्रकार पहिले दुःखी नहीं हुई, उसी प्रकार प्रसन्न भी नहीं

हुई, तब ज्योतिस्वरूप भगवान् शंकर बड़े संतुष्ट हुये ॥ ४६ ॥ और बोले हे घुश्मे ! हम प्रसन्न हैं तू वर मांग, दुष्टा सुदेहा ने इसे मार डाला था; इसलिये हे घुश्मे ! हम उसे त्रिशूल से मारेंगे ॥ ४७ ॥ पर घुश्मा ने यह वर माँगा कि हे प्रभो ! हमारी बड़ी बहिन सुदेहा की रक्षा करो, आपके दर्शन मात्रेण कोई पाप जीव में नहीं रहता ॥ ४८ ॥ दूसरों का अपकार करनेवालों में जो पुरुष उपकार करता है, उसके दर्शन से पाप नहीं रहता ॥ ४९ ॥ और हे प्रभो ! लोक की रक्षा के लिये आप यहाँ सदा निवास करें, घुश्मा के ऐसा कहने पर श्रीशिवजी और भी अधिक प्रसन्न हुये ॥ ५० ॥ और बोले कि हे घुश्मे ! और कोई वर मांगो तुम्हारे हित के लिये हम देते हैं। ऐसा सुनकर वह बोली कि हे प्रभो ! यदि आप को वर ही देना है ॥ ५१ ॥ तो लोकरक्षार्थ आप यहाँ सदा निवास करें, तब श्रीशंकरजी बोले हे घुश्मे ! तुम्हारे नाम से हमारा पवित्र घुश्मेश्वर जी नाम प्रसिद्ध होगा, और यह सरोवर हमारे लिंगों का स्थान बन गया, इसलिये यह "शिवालय" नामक तीर्थ तीनोंलोक में प्रसिद्ध होगा और हे सुन्दरव्रतधारण करनेवाली घुश्मे ! तुम्हारे वंश में एक पुत्र सदैव होता रहेगा ॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और इसी प्रकार के गुणी पुत्र होंगे, इसमें संदेह नहीं है ऐसा कह श्रीशंकरजी लिंगरूप से वहाँ स्थित हो गये ॥ ५५ ॥ और उनका नाम तब से श्रीघुश्मेश्वरजी प्रसिद्ध हुआ, सरोवर शिवालयतीर्थ कहाया, तब सुधर्मा और घुश्मा ने सुदेहा के अपराध शांत्यर्थ श्रीघुश्मेश्वरजी की १०१ एक सौ एक प्रदक्षिण और इसी प्रकार श्रीपार्वतीजी की प्रदक्षिणायें कराईं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ श्रीशंकरजी की पूजा कर सुदेहा को आश्वासन दे परस्पर मिल अन्तःकरण के कालुष्य को दूर कर वे सब सुख प्राप्त किये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार श्रीघुश्मेश्वरजी ज्योतिर्लिंग की उत्पत्ति हुई, इनका दर्शन कर प्राणी सर्वपाप से छूट जाते हैं,

सुख सम्पत्ति सदैव इस प्रकार बढ़ती है जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा को वृद्धि होती है ॥ ५९ ॥ सूतजी बोले, कि ज्योतिर्लिङ्गों के विषय में जो कुछ हमने सुना था वह कहा, इसको सुनकर मनुष्य सर्व पापों से रहित होता है ॥ ६० ॥

१२—घुश्मेशञ्च शिवालये

अर्थात्

बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्गश्रीघुश्मेश्वरजी का वर्णन

श्रीघुश्मेश्वरजी की उत्पत्ति भूतल पर जिस प्रकार हुई; उसका वर्णन शास्त्रोक्त प्रकार से किया गया, और संक्षेप में माहात्म्य भी बताया गया। जाने का मार्ग और वहाँ की परिस्थिति तथा सुविधा निम्नलिखित प्रकार से जानना चाहिये।

श्रीघुश्मेश्वरजी जाने के लिये सभी प्रान्त के यात्रियों के लिये जी० आई० पी० रेलवे के मनमाड़ जंकशन से निजामस्टेट रेलवे के औरंगाबाद अथवा दौलताबाद स्टेशनों पर उतरना चाहिये। पर इन दोनों स्टेशनों में भी औरंगाबाद उतरना अच्छा है। क्योंकि औरंगाबाद में सवारी आदि का प्रबन्ध ठीक प्रकार से हो सकता है। दौलताबाद में उतनी सुविधा नहीं रहती। यद्यपि मोटर (लारी) दौलताबाद होकर ही जाती है; पर विदेशी अनजान यात्री के लिये ठहरने का प्रबन्ध धर्मशाला आदि का जैसा औरंगाबाद में है वैसी सुविधा दौलताबाद में नहीं मिल सकती, केवल कुछ निकट अवश्य पड़ेगा। दौलताबाद के पहिले

'लासोर' स्टेशन पड़ता है, और इलोरारोड भी पड़ता है पर इन स्टेशनों पर नहीं उतरना चाहिये, क्योंकि इन दोनों स्टेशनों से ७ या ८ कोश दूर पड़ता है, सवारी आदि नहीं मिलती, यदि किसी प्रयत्न से वंडी (वैलगाड़ी) या टट्टू मिल भी जाय तो मार्ग जंगली और कष्टप्रद है। श्रीघुश्मेश्वरजी जिस ग्राम के निकट विराजमान हैं, वह ग्राम इलोरा या इलोर के नाम से विख्यात है। पर वहाँ इस ग्राम को ईरोड़ या वेरूड़ कहते हैं। गाँव कोई बड़ा ग्राम नहीं है, मामूली चीजें केवल शाकपात मिल सकता है; आटा दाल चावल आदि सब मिल सकता है। औरंगाबाद से वेरूढ़ के लिये (मोटर) लारी जाती है पहिले किराया ।।) हाली पैसा लगता था। निजामस्टेट भर में हाली रुपया या पैसा ही चलता था। निजाम रेलवे में भी हाली रुपया पैसा ही लेते थे, इसलिये अंग्रेजी रुपये के हाली रुपया पैसा बना लेना आवश्यक था; अन्यथा समय पर कम और हानि होती थी इसका भाव भी समय २ पर बदलता रहता था। हाली १।) एक रुपया चार आना बराबर अंग्रेजी १) एक रुपये के होता था, पर कभी २ एक रुपया अंग्रेजी देने पर १≈) या १≡) देते थे। कहीं २ अंग्रेजी ।।।-) देने पर हाली एक १) रुपया देते थे। यह निजाम स्टेट का एक बड़ा व्यापार था; इसमें लाखों रुपये व्यापारी अनायास कमाते थे। विदेशी यात्री इस विषय में अनभिज्ञ रहते हैं; उनसे समय पर अत्यन्त आवश्यकता होने के कारण मनमाना भाव भी लगाया जाता था। इससे यात्रियों को हानि होती थी; पर लाचारी थी। हाली ६ पैसे का एक हाली आना माना जाता है। इस तरह के आनों से १६ आनों का हाली १) एक रुपया होता है। इस प्रकार इस स्टेट का एक यह विचित्र ही ढंग है। इस स्टेट भर में जो तीर्थ हैं उनके लिये हाली रुपया या पैसे पास रखना चाहिये,

अधिक नहीं रखना चाहिये; जहाँ तहाँ स्टेशनों पर हाली रुपया पैसा वेंचनेवाले रहते भी हैं। पर पहिले से जो प्रबन्ध रहता है; उसमें अधिक हानि की सम्भावना नहीं रहती है। स्टेट के पैसे, दुअन्नी, चवन्नी सब पहिचान रखना चाहिये। खाद्य सामग्री बांधने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं; पर यदि बन सके तो साथ में रखना अच्छा है। हमने जिस समय यात्रा की थी तब यही दशा थी। शायद अब कुछ सुधार हुआ हो।

औरंगाबाद के मोटर अड्डे से लारियाँ वेरूड़ के लिये जाया करती हैं। लारी में बैठ कर वेरूड़ गाँव में दिन ही दिन पहुँच जाना अच्छा है क्यों कि वहाँ कोई धर्मशालादि यात्रियों के ठहरने के लिये नहीं बनी है। किसी गाँववाले आदमी के घर ठहरना चाहिये। उसको कुछ देने से वह स्थान का प्रबंध कर देता है। अकेला पुरुषयात्री मंदिर में ही ठहर सकता है; पर अधिक यात्रियों के ठहरने के योग्य मंदिर नहीं है॥ अपनी स्थिति ठीक करके पास में ही शिवालयतीर्थ में अवगाहनकर श्रीघुश्मेश्वरजी के दर्शनों को जाना चाहिये। अपनी खास २ चीजें (द्रव्यादि) साथ में बड़ी सावधानी से रखनी चाहिये। दर्शन आरती आदि का आनन्द ले उस दिन अपने स्थान पर विश्राम करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रभातकालीन कृत्य से निवृत्त हो "शिवालयतीर्थ" में जो यहाँ का प्रधानतीर्थ है स्नानादि कर पूजन सामग्री ठीक साथ में लेकर दर्शन, पूजन करना चाहिये। भगवान् घुश्मेश्वरजी का मंदिर पत्थर का बहुत पुष्ट बना हुआ है। यह मंदिर और शिवालयतीर्थ अहल्याबाई की सुकीर्ति है। मंदिर के चारों ओर एक चहारदीवारी पत्थर की जो बहुत ऊँची नहीं है घूमी हुई है। और उस चहारदीवारी में दो तरफ़ बैठकर घुसने योग्य छोटे २ द्वार है। एक द्वार शिवालयतीर्थ स्नानादि के लिये गाँव की ओर

और दूसरा नदीघाट की ओर जाने के लिये है। मंदिर के नीचे एक बहुत छोटी सी नदी है; परन्तु पानी उसमें वर्षाकालादि में रहता है। गर्मी के दिनों में उसमें पानी बहुत ही थोड़ा और अशुद्ध रहता है। मंदिर से नदी तक जाने को सीढ़ियाँ बनी हैं और एक छोटा सा घाट भी है। तीसरी एक छोटी सी खिड़की जंगल जाने के लिये दीवार तोड़ कर चहारदीवारी में बनाई गई है। मंदिर बस्ती से बाहर है कुछ सामान्य जंगल सा है। मंदिर के भीतर जब घुसते हैं तो खुलासा पर्याप्त स्थान है। एक तरफ़ कुछ फूलों के वृक्ष और देवमूर्तियाँ तथा पुजारी के रहने का स्थान है। दूसरी ओर एक बावड़ी जो अमृतकुंड कही जाती है; भीतर जाने की सीढ़ियाँ लगी हैं; जल भी अच्छाही है; और एक कूप है। श्रीघुश्मेश्वरजी में जल इसी कूप का अथवा शिवालयतीर्थ का चढ़ता है। मंदिर देखने में बड़ा सुन्दर लगता है; मंदिर के बाहर चारों ओर तथा भीतर सभामण्डप में बड़े चौड़े २ पत्थर लगाये गये हैं जिनमें मनुष्य बड़े आनन्द से सो सकता है। सभामण्डप में गच पर कच्छप मूर्ति बनी है। श्रीशंकरजी की पूजा लेनेवाले 'गुरु' कहलाते हैं। इन्हें प्रायः शूद्र ही समझना चाहिये। कालान्तर से यही लोग चले आते हैं। केवल भोग लगाने के लिये एक महाराष्ट्र ब्राह्मण नियुक्त है। मंदिर के भीतर जब जाने लगे तो सावधानी से जाना चाहिये, क्यों कि दो चार सीढ़ी नीचे उतरना पड़ता है, और जाते कुछ अंधकार सा प्रतीत होता है। यद्यपि दीपक कई एक दिन रात जला करते हैं; पर उतना प्रकाश नहीं ज्ञात होता है।

श्रीघुश्मेश्वरजी बड़े दीनवत्सल हैं, दर्शन होते ही सर्वपाप भस्मसात् हो जाते हैं और मन में शुद्ध सत्त्वगुण की लहरें उमड़ पड़ती हैं। चित्त को एकाग्र करके सप्रेम भगवान् की पूजा अपने

हाथों से कर भोग अर्पण, आरती उतार, साष्टांगदण्डवत् द्वारा प्रणाम कर आनन्दसिन्धु में चित्त मग्न हो जाता है। मूर्ति में जो पूजा द्रव्यादि चढ़ाते हैं वह वही गुरु लोग ले लेते हैं। भगवान् घुश्मेश्वरजी की मूर्ति १ हाथ से कुछ अधिक ऊँची है और बहुत स्थूल भी नहीं है। पूजनादि के अनन्तर भगवान् की स्तुति पाठ, प्रदक्षिणादि कर कुछ समय बैठ आनन्द लेना चाहिये; तदनन्तर बाहर आने पर चहारदीवारीद्वार से निकलते ही दो मन्दिर मिलते हैं तिनमें एक हनुमानजी तथा दूसरा भगवतीजी या भैरवजी का है। यहाँ पर इमली के बड़े बड़े विशाल वृक्ष हैं। पास ही सड़क है, बहुत लोग इसी स्थान पर उतर कर सीधे मन्दिर चले आते हैं। और जब भीड़ नहीं रहतीं तब मन्दिर में ही ठहर जाते हैं। यहाँ इनको घृष्णेश्वरजी कहते हैं। पर इनका शुद्ध नाम घुश्मेश्वरजी है जो उक्त कथानक से ज्ञात होता है। सड़क से कुछ दूर चलने पर शिवालयतीर्थ मिलता है; इसकी बनावट अतीव मनोहर है। चारों तरफ से श्रीघुश्मेश्वरजी के मन्दिर की भाँति यह भी सुदृढ़ पत्थर का ही बना है कहीं भी टूटा फूटा नहीं है। सरोवर के तट पर बैठने से चित्त एकदम शांति में भर जाता है। ऐकान्तिक सुखास्वाद होता है; इसी से इसका महत्त्व अभिव्यक्त है। सरोवर ऊपर से तो चौड़ा पर ज्यों ज्यों नीचे गया है त्यों त्यों संकुचित होता गया है। ज्ञात होता है कि मानो कोई यज्ञ कुण्ड है। नीचे स्वच्छ जल भूगर्भ से निकला हुआ श्यामरंग का भरा रहता है, ऊपर से सीढ़ियों की पंक्ति बड़ी भली ज्ञात होती है ऊपर से उतरते जब बीच में पहुँचते हैं तब सोपानों पर चार मन्दिर चारों कोनों पर शिवजी के छोटे छोटे बने बड़े सुन्दर ज्ञात होते हैं, ऊपर भी दो चार मन्दिर बने हैं; पास में सड़क और वेरूड़ ग्राम है। यह बड़े महत्त्व का तीर्थ है; इसमें स्नान करते ही

मनुष्य अवश्य ही निष्पाप हो जाता है। इस प्रकार पूजन कृत्य एवं तीर्थ कार्य से निवृत्त हो, अपने निवास स्थान पर आकर भोजन विश्राम लेना चाहिये। तीन वजे एक जानकार व्यक्ति को साथ में लेकर 'लैनी' देखने अवश्य जाना चाहिये। ये आज कल इलोरा की गुफायें कहलाती हैं।

मन्दिर से एक मील दूरी पर ये गुफायें एक छोटे से पहाड़ को काट कर बड़ी निपुणता और कठिनता के साथ बनाई गई हैं। यह दृश्य अपने प्राचीन आर्यजाति के गौरव तथा शिल्प कला का एक छोटा सा उदाहरण रूप है। देखते ही मनुष्य आश्चर्य में भर जाता है। गुफायें संख्या में ३४ हैं। इनके पास से सड़क बनाई गई है। और ऊपर पहाड़ी पर एक बंगला बना हुआ है; नीचे भी दो एक छोटी २ गुम्टी चपरासियों के रहने को बनी हैं। ये गुफायें कब बनाई गई हैं और किसने बनाया है यह निर्णय करना बड़ा कठिन है। सड़क पहाड़ी के ऊपरी बंगले तक गई है। इनको देखने के लिये दूर दूर से यात्री तथा अंग्रेज लोग भी आया करते हैं। इसी लिये अंग्रेजों आदि के लिये ऊपर बंगला बनाया गया है। इन गुफावों में एक से लेकर दश १० तक बौद्धों की हैं और उनमें बड़ी बड़ी भयंकर विशाल बौद्धों के इष्टों की मूर्तियाँ हैं।

और ११ से २८ तक सनातनवैदिकधर्मावलम्बियों के इष्टदेवों के मंदिर तथा मूर्तियां एवं गुफायें हैं। अनन्तर २९ से ३४ तक जैनों की किनारे की तरफ हैं। देखने से यह ज्ञात होता है कि मध्य में और ठीक स्थान पर होने से हिन्दुवों के सबसे प्राचीन हैं, अनन्तर बौद्ध, जैनधर्मियों ने स्पर्धावश, यथास्थान यथाकथञ्चित् बनाया है। जैनियों की तो बिल्कुल ही साधारण हैं। ज्ञात होता है कि किसी समय यह स्थान कोई महत्त्व रखता रहा होगा जिससे अन्य मतवालों ने भी स्पर्धावश अपनी कृति कर दिखाई। पास ही श्रीघुश्मेश्वरज्योतिर्लिङ्ग तीर्थ है। ये गुफायें पहाड़

काट-काट कर कितनी कठिनता और व्यय से बनाई गई हैं। जिसका कुछ वारपार नहीं, पर आज जनशून्यता के कारण यहां भयंकरता घोररूप में निवास करती है। अकेले दुकेले मनुष्यों को इनके भीतर घुसते भय उत्पन्न हो जाता है। कुछ वर्णन नीचे देते हैं।

१—जगन्नाथगुफा—इसके प्रवेशद्वार पर ध्यानमग्न प्रायः तीन हाथ लम्बी श्रीजगन्नाथमूर्ति है। गुफा के भीतर दो घर हैं। भीतर वाले घर में १२ खम्भे हैं और नाना प्रकार की मूर्तियां हैं। इसका प्रवेशद्वार ३५ फुट ऊँचा है।

२—आदिनाथगुफा—ऊपर श्रीलक्ष्मीनारायणजी की मूर्ति और भीतर प्रायः ३ हाथ ऊँची आदिनाथ की मूर्ति है।

३—इन्द्रसभागुफा—इसके भीतर और भी कई गुफायें हैं, और यह प्रायः बड़ी सुन्दर गुफा है। पहाड़ काटकर मन्दिर के रूप में यह गुफा बनाई गई है। बीच में सिंहासन के ऊपर ध्याननिरत एक मुनिमूर्ति है। दक्षिण तरफ एक हाथी और कई तपस्वियों की मूर्तियाँ हैं। थोड़ी दूर पर ऐरावत हाथी की मूर्ति के ऊपर इन्द्र की मूर्ति और उसके पास चार सखियों से युक्त सिंह पर बैठी इन्द्राणी हैं। इन्द्राणी के गोद में एक बालक है; और भी कई मूर्तियां आस-पास हैं। घर में १२ खम्भे भी हैं।

४—परशुरामगुफा—यह गुफा अतीव मनोहर है।

५—कैलाश या नीलकंठमहादेवगुफा—इसमें प्रवेशद्वार पर नन्दीश्वर की मूर्ति और भीतर एक विशाल शिवलिंग है। इसके अतिरिक्त, कार्तिकेय, गणेश, सरस्वती प्रभृति की मूर्तियाँ हैं, प्रवेशद्वार के बगल में श्रीलक्ष्मीजी की मूर्ति है।

६—श्रीरामेश्वरगुफा—इसके द्वार पर भी नन्दीश्वर मूर्ति है। मूर्ति के बगल में एक जलपूर्णकुण्ड और भीतर शिवलिङ्ग है। इस गुफा के भीतर और भी आश्चर्यप्रद मूर्तियाँ हैं।

७—जनवासगुफा—इसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वाराहदेव, और एक भयंकर कुम्भकरण की मूर्ति-सी बनी है।

८—दशावतारगुफा—इस गुफा में दशावतारों की लीला तथा गणेश, पार्वती, सूर्य्य, आदि अनेक देवों की मूर्तियां स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त—

९—श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजीगुफा; विश्वकर्मा आदि की गुफायें हैं। यह दृश्य देखने के लिये ३ बजे स्थानपर पहुँच जाना चाहिये अन्यथा अंधकार हो जाने से कुछ दिखाई न पड़ेगा, और गिरने पड़ने का भी भय रहता है।

तीसरे दिन प्रभात कृत्य से निवृत्त हो शिवालयतीर्थ स्नान कर श्रीशंकरजी का पूजन-अर्चन कर एक रुद्राष्टाध्यायी के अनुसार शिवाभिषेक करना; कराना चाहिये। और यथाशक्ति ब्राह्मणों को तथा वहां के निवासियों को दानमान से संतुष्ट कर चलना चाहिये। यदि बने तो कुछ हवन तथा ब्राह्मण भोजनादि करा देना चाहिये। वेरूड़ ग्राम में भी कुछ देवमूर्तियाँ हैं। इस प्रकार दर्शनानन्द प्राप्त कर तीन रात्रि निवास कर चल देना चाहिये। शिवरात्रि के समय श्रीघुश्मेश्वरजी के दर्शनार्थ अधिक लोग जाते हैं। लौटते समय दौलताबाद में एक सिद्धपुरुष "जनार्दनजी" की टेकरी मिलती है, उस टेकरी पर बहुत लोग दर्शनार्थ जाते हैं। एक छोटा सा मंदिर भी बना है। यदि इच्छा हो तो दर्शन कर लेना चाहिये। जनार्दनजी के शिष्य एकनाथजी भी सिद्ध पुरुष हुये थे। इनका मान दक्षिणीय लोगों में अधिक है। पास ही किसी क्षत्रियराजा का बनवाया एक पुराना किला उसकी कीर्ति का एक नमूना अब भी विद्यमान है। इस प्रकार देखते हुये दौलताबाद अथवा औरंगाबाद स्टेशन जाना चाहिये। औरंगाबाद से गाड़ी में सवार होकर परलीवैद्यनाथजी के दर्शनों को प्रस्थान करना चाहिये॥

पुस्तक मिलने का पता

प्रकाशक—
पण्डित रामदुलारे द्विवेदी
मु० पो० जमुरावाँ
जिला फतेहपुर (संयुक्तप्रांत)

पं० रामगोविन्द शुक्ल
अपारनाथ मठ—ढुण्ढीराजगणेशगली
बनारस सिटी।

जयकृष्णदास हरिदासगुप्त
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
विद्याविलास प्रेस गोपालमन्दिर
के उत्तर फाटक बनारस सिटी

मास्टरखेलाड़ीलाल
ऐण्ड सन्स—कचौड़ीगली
बनारस सिटी

अधिक संख्या में पुस्तक ग्राहकों को प्रकाशक से सब निश्चय करना चाहिये।

मुद्रक—बालकृष्णशास्त्री, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, काशी। २०७ ब–५२